# क्रान्ति दृष्टा प्रवचन

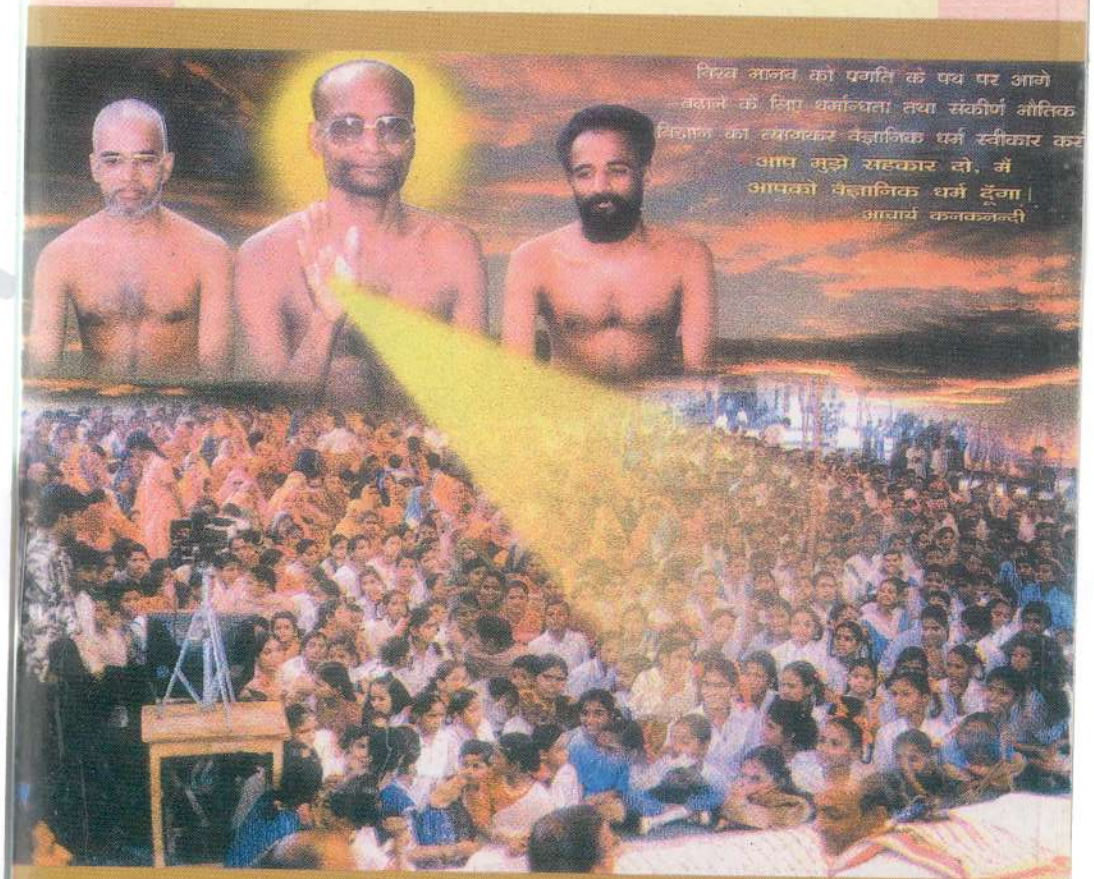


आ. रत्न श्री कनकनन्दीजीश्री गुरुदेव

# क्रांतिदृष्टा प्रवचन

आचार्यरत्न कनकनंदीजी गुरुदेव

# पुस्तक का नाम - क्रांतिदृष्टा प्रवचन

*आयड़–उदयपुरमें आयोजित चतुर्थ विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्टी के उपलक्ष्य में प्रकाशित*

**प्रवचनकार** – आचार्य रत्न कनकनंदीजी गुरूदेव

**संकलनकत्री**– आ. ऋद्धिश्री

**प्रकाशक** – धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान

***धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान का इंटरनेट एवं ई-मेल***

www.Jain kanaknandi.org.

E-mail - info @ Jain kanaknandi. org.

**द्रव्यदाता :**

**(1) राजमल जी पाटोदी,**

रोहित इन्वेस्टमेन्ट, 278, पाटोदी सदन, सोपिंग सेन्टर – कोटा

2–द–8 विज्ञाननगर – कोटा (राज.)

फोन नं. : (0744) 23474, 450016, 421487

**(2) महावीर जी जैन मेहता**

30, महावीरनगर, पुलिस चौकी के सामने, आयड़ (दक्षिण) उदयपुर (राज.)

फोन नं. : (0294) 422480, 413994

## मृत्यु-महोत्सव

**''गुरुमूले यतिनिचिते, चैत्य-सिद्धान्त-वार्धिसद्घोषे।**
**मम भवतु जन्म-जन्मनि, सन्यसन-समन्वित मरणम्॥''**

**आचार्य देवनन्दि जी (समाधि भक्ति, 4, पृष्ट 184)**

**अर्थ** –हे परमात्मन! मुनि–समुदाय से वेष्टित गुरु के पादमूल में, तीर्थंकर की प्रतिमा के समीप अथवा जहाँ पर तत्त्वज्ञान - सिद्धान्त के समुद्र के समान गम्भीर शब्द हो रहे हों – ऐसे स्थान में मेरा जन्म–जन्मान्तर में सन्यास – सहित मरणोत्सव हो।





**धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान ग्रंथांक : 121**

**पुस्तक** – क्रांति दृष्टा प्रवचन

**प्रवचनकार**– वैज्ञानिक धर्माचार्य आचार्यरत्न कनकनंदीजी गुरुदेव

**आशीर्वाद** – गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी गुरुदेव

**सहयोगी**– मुनि श्री विद्यानन्दीजी, मुनिश्री आज्ञासागर जी, आ. ऋद्धिश्री

**परम शिरोमणि संरक्षक**– ''दानश्री'' श्री रमेशचन्द्रजी कोटड़िया

(दानवीर, गुरुभक्त, उद्योगपति प्रतापगढ़, नि. मुंबई, अमेरिका प्रवासी)

फोन नं.: (022) 8017281, 8016207, 8954989

**अध्यक्ष**– 'दानश्री' श्री गुणपाल जी जैन (भूतपूर्व इंजीनियर वर्तमान उद्योगपति)

**वरिष्ठोपाध्यक्ष**– 'प्रज्ञापुँज' श्री सुशीलचन्द्रजी जैन (एम.एस.सी. भूतपूर्व भौतिक शास्त्र प्रवक्ता) बड़ौत (मेरठ) फो. : (01234) 62845

**कार्याध्यक्ष** – श्री गुरुचरण एम. जैन (वकील हाइकोर्ट, मुंबई)

**उपाध्यक्ष**– (1) श्री प्रभातकुमार जी जैन (एम.एस.सी. रसायन शास्त्र) मुजफ्फरनगर, फो. : (0131) 431998

(2) 'सेवाश्री' राजमल जी पाटोदी (कर्त्तव्यनिष्ठ, सामाजिक कार्यकर्ता, कोटा) फोन नं. : (0744) 23474

(3) श्री रघुवीर सिंह जैन (एम.एस.सी., एल–एल.बी., रिटायर्ड हेड ऑफ केमेस्ट्री व प्रिंसीपल डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज) फो: (0131) 26514, 407865

**मानक निर्देशक** – 'सरस्वती पुत्र' डा. राजमल जी जैन (अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक)

**संयुक्त मंत्री** – श्री पंकजकुमार जी जैन (बी.एस.सी.) बड़ौत

फोन नं. : (01234) 65076, 73179

**संस्करण– प्रथम– 2000**

**मूल्य** – 10.00

**प्रतियाँ**– 2000

**लेसर टाईप सेटर्स :**

***श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज,***

***सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद–380026***

***फोन – 5892711, 5891771***

## प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान–

(1) श्री सुशीलचन्द्र जी जैन, 'धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान'
निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ौत (यू.पी.)
(2) श्री गुणपालजी जैन,
बेहड़ा भवन 87/1 कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर (यू.पी.)
फो नं. : (0131) 450229
(3) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डो. राजमल जी जैन,
4–5 आदर्श कॉलोनी पुला उदयपुर (राज.)
फो. नं. (0294) 440793
(4) श्रीमती लक्ष्मीगुरुचरण जी जैन,
144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्पलेक्स,
अंधेरी (वे.) मुंबई फोन नं. : (022) 6327152, 6312124,
63271152
(5) 'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका) w/o वीरेन्द्रकुमार डालचन्द जी गड़िया
कपड़े के व्यापारी – सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001
फोन नं. : (02906) 32043
(6) श्री महावीर कुमार जैन,
13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818
(7) धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान
C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटुलाल चित्तोड़ा,
आयड़ बस स्टोप के पास, उदयपुर–313001 (राजस्थान)
फो.नं. 413565

### निर्ग्रन्थ

*यह आत्मारूपी लाल (मणि) सबके अंचल में बँधी हुई है। इससे वंचित कोई नहीं है, फिर भी लोग कंगाल (निर्धन) दिखाई देते हैं, तो इसका कारण यही है कि उन्होंने गाँठ खोल कर अपने 'लाल' को देखने का कष्ट कभी उठाया नहीं। आत्मदर्शन मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी है; किन्तु उसमें साँसारिकता की गाँठ पड़ी हुई है। उस 'गाँठ' को खोलकर 'निर्ग्रन्थ' हुए बिना इस निर्धनता से छुटकारा नहीं मिल सकता।*





# आचार्य श्री की वंदना

**तर्ज–जय – जय संतोषी माँ जय–जय हे –**

मैं तो भक्ति करुं रे आज कनकनंदी ऋषिवर की
मैं तो पूजन करूँ रे आज कनकनंदी गुरुवर की
जय जय श्री कनकनंदी गुरुवर जी–2
मिलती है शांति अपार गुरु के दर्शन से
कैसी करुणा की झलके बहार गुरु के अन्तर से–2
क्रोध तजूँ, मान तजूँ, माया और लोभ तजूँ
निज को निहारूँ रे ओ अपना जीवन सुधारूँ रे(1)
मैं तो पूजन.....
बड़ी महिमा है बड़ा सार, गुरु की वाणी में
बड़ा ज्ञान का भरा है भण्डार गुरु के अन्तर में–2
ज्ञान लहूँ, भक्ति करूँ, श्रद्धा सहित नमन करुँ
केवल ऋद्धि मिले गुरु आज (2)
मैं तो भक्ति.....
मिटे भव–भव का दुःख आपार, गुरू की सेवा से
नित्य नमूँ मैं बारम्बार, गुरु के चरणों में
राग तँजू, मोह तजूँ, हर्ष–हर्ष भक्ति करूँ
भव –भव सुधारूँ रे (3)
मैं तो भक्ति.....
ज्ञान अमृत देते है आप मम उद्धार किया
गुरु कनकनंदी जी महान् धर्म प्रचार किया
नमन करूँ बार–बार चरण नमूँ कोटि बार
शीश झुकाऊँ रे, ओ गुरूवर शीश झुकाऊँ मैं (4)
मैं तो भक्ति.....

# ऐसे है मेरे पूज्य गुरुवर जिनका दर्शन भव्यों के लिए आनंद का सागर बन जाता है

आर्यिका ऋद्धिश्री

प्रकाश पथ के पथिक, मुक्तिपथ के आराधक–प्रकाश का ज्ञान कराने के लिए, जीवन को सौरभमय, उज्ज्वलमय, कीर्तिमय कैसे बनाया जाता है ? इस कथा का जानना अनुपम, अनिवर्चनीय आनंद से गुजरना है।

सुंदर सा इक गाँव ब्रह्मपुरी, उस गाँव में असीम संभावनाओं का जन्म हुआ। उन असीम सम्भावनाओं से अनजान है दुनिया लेकिन प्रकृति का नियम है कि हर संभावना किसी कोख में कसमसाती है, लम्बी अंधेरी यात्रा से गुजरती है और एक दिन सम्पूर्ण संसार को अपने प्रकाश से प्रकाशित करती है। जैसे– बीजवृक्ष बनने से पूर्व मिट्टी में गढ़ता है, अंधेरे में रहता है तब कहीं जाकर एक दिन फल–फूलों से सुसज्जित सुंदर विशाल वृक्ष दिखायी देता है। प्रकाश तो सभी देखते हैं लेकिन अंधेरे को कौन देखता है तथापि अंधेरे से गुजरने के बाद ही प्रकाश की प्राप्ति होती है। क्योंकि समर्पण–त्याग ही कुछ पाने की विधि है। बिना तपे सफलता कहाँ, बिना साधना सिद्धि कहाँ ? स्व को साधने के लिए अपार श्रम तथा जागृति की जरुरत है। लोगों की दृष्टि सतह पर होती है तह तक जाने के लिए दृष्टि गहरी चाहिए।

जब कोई कर्मयोगी अपने प्रबल पुरुषार्थ के माध्यम से समाज के भाग्य का इतिहास लिखता है तब जनता उसे बड़े ही गौरव से देखती है, सुनती है उसके बताये मार्ग पर चलने में अपने को धन्य मानती है। आचार्य श्री इसी तरह जनता के समक्ष उभर कर आये। गुरूवर जहाँ भी जाते है वहाँ के लोगों में नया उमंग, नयी उत्साह, नयी आशाओं की किरणें विकसित हो जाती हैं। जो एक बार गुरुवर के पास आता है वह उनका होकर रह जाता है। ज्ञान का आलोक जन–जन में जगाया, भटके हुऐ लोगों को प्रकाश का पथ मिला जनता ऐसे ज्ञानर्षि को पाकर खुश है।

जिस साधना के राजमार्ग पर गुरुवर ने कदम रखे वह महावीर का बताया अनूठा आत्मसंयम का मार्ग है जहाँ पग–पग पर अग्नि परीक्षा के बीच आत्मपरीक्षा से साधक को गुजरना पड़ता है। समझौतावादी इस पथ पर चल सकते हैं, पर पहुँच नहीं पाते वे बीच रास्ते में ही अटक–भटक जाते है। गुरूदेव ने महावीर की वाणी को आचरण में लाकर सार्थक करके बताया कि जो इन्द्रिय, मन विजेता





है वही जग विजेता है। यहाँ तो अपने आपसे समझौता करना भी गुनाह है। प्रामाणिकता ही सच्ची कसौटी है गुरूवर सत्य की कसौटी पर खरे उतरे हैं। उन्होंने किसी मोह के क्षणों में अपने मन को उलझने नहीं दिया। अपनी इन्द्रिय, मन पर नियन्त्रण करके विजेता का रूप लिया है। प्रमाद कोसों दूर है, जागरण ही उनका मूलमंत्र है। यही व्यक्ति की महानता, श्रेष्ठता, गुणवत्ता का परिचायक है। जनता ऐसे ही गुणी पुरुषों को पसन्द करती है।

सफलता पाना कठिन है परंतु उससे भी ज्यादा कठिन है सफलता के गगनचुम्बी शिखर पर हमेशा बने रहना। जो भीतर से बड़े होते हैं उनके सफलता व यश की सीमा बहुत ही विशाल होती है। जो भीतर से छोटे होते हैं तथा बाहर से बड़े बनने की कोशिश में व्यग्यं के पात्र बन जाते हैं। बड़ा बनाया नहीं जाता, बना जाता है।

कुछ जन्मजात बड़े होते हैं, कुछ अपने पौरुष पुरूषार्थ से बड़े बनते हैं, कुछ जबरदस्ती बड़े बनने की नाकामयाब कोशिश करते हैं। मम गुरूदेव पूर्णरूपेण पुरूषार्थ के प्रतीक हैं। अपने पुरूषार्थ से उन्होंने अपने जीवन को कई आयाम दिये हैं। उनके पुरूषार्थ ने जीवन में ऐसी चमक पैदा की है कि जिस चमक से इस युग का जन समाज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।

गुरूदेव का कहना है कि ''रुकना ही मृत्यु है चलना जिन्दगी है।'' चलनेवाला ही जीवन का अमृत पाता है। कुछ लोग चलते हैं पर कही पहुँच नहीं पाते क्योंकि उनके पास कोई लक्ष्य नहीं होता। दुविधाओं के चोराहे पर बैठे वे जिन्दगी और समय को व्यय करते हैं। दुविधाग्रस्थ जीवन औरों के लिए मार्गदर्शक, पथ प्रदर्शक नहीं बन सकता। जो स्वयं प्यासा है वह औरों की प्यास क्या बुझायेगा – स्वयं भटका दूसरों को क्या राह बतायेगा ? गुरूदेव तो महावीरके बताये राजमार्ग के एक वीर अनुयायी हैं। वे धीर–वीर प्रवृत्ति वाले हैं। पीछे मुड़ना तो उन्होंने बाल्यावस्था से ही नहीं जाना है। वे भीष्म प्रतिज्ञ हैं। वे अपने को तौलना चाहते हैं। पूर्णरूपेण कसना चाहते हैं सत्य–त्याग की कसौटी पर स्वयं को ओर देखना चाहते हैं देश को, देशवासियों को सुखी, सम्पन्न, समृद्धिशाली, खुशहाल। जो पास में है उसे बाँटने में सुख है ऐसा गुरुदेव मानते हैं। गुरूदेव के पास ज्ञान रूपी अपार–अटूट सम्पत्ति है। ज्ञान, प्रेम, सेवा, वात्सल्य, करूणा ऐसी सम्पत्ति है जो बाँटने से कभी खत्म नहीं होती है। गुरूदेव जहाँ भी गये वहाँ ये सम्पत्ति दिल खोलकर बाँटी। लोग आते गये, जुड़ते गये एक लम्बी श्रृंखला लेने वालों की बनती चली गयी। जनता इस अनोखे ज्ञानयोगी को आश्चर्य से निहारती – वाणी में गजब का माधुर्य / स्वभाव विनम्र सरल / मन मक्खन की तरह मुलायम / सीधापन / सादगी /

सौम्यता / सहजता / सरलता / वात्सल्यता / निर्भीकता / गम्भीरता इतने सारे गुण कि लोगों का मन अनायास छू ले, मोहित करले, आकर्षित कर दे।

लोग गुरूदेव का दर्शन करके एक अकथनीय, आनंद से भर जाते हैं। गुरूदेव ने अपने नाम को व्यक्तित्व से जोड़कर यथार्थ नाम को साकार किया है।

सच्चा साधक जब साधना के पथ पर चलता है तो सिद्धियाँ स्वयमेव उसके पास आ जाती हैं। यश, कीर्ति, चाहना कामना आदि ऐसी तितलियाँ हैं जो इसके पीछे भागता है वे उनका पीछा छोड़ देती हैं लेकिन जो उनको ठुकरा देता है, उनसे मुँह मोड़ लेता है उसका वह वरण करती हैं। लोग तरह–तरह के अभिनय, नाटक करते हैं। इन तितलियों को खुश करने के लिए कुछ यश शिखर को छूने के लिए जी तोड़ प्रयास करते हैं पर वे मोह–माया में उलझकर नीचे ही गिरते हैं। शिखर पर निरंतर बने रहना बहुत बड़ी सिद्धि है, बहुत बडी सफलता है। आत्मविजेता, मनविजेता ही सदा ऐसे शिखर पर रह पाते है। जन समाज में गुरूदेव की अनुपम, अलौकिक छवि है। सभी को आश्चर्य होता है कि इतना सहजपन / सरलपन कहाँ संभव है ? इतना माधुर्य है कि बार–बार मन करता है मिलने को। जैसे भीतर वैसे बाहर, जैसे बाहर वैसे भीतर। दुहरापन,दिखावा, छल–कपट, पाखण्ड, दंभ नाम मात्र को नहीं। सभी के दीपस्तम्भ हैं। दीपक रास्ता बताता है बिना किसी अपेक्षा के। भटकने वाला अंधेरे में तो क्या प्रकाश में भी भटक जाता है। आचार्य श्री ऐसे ही धर्मदीपक हैं जो भटके हुए प्राणियों को सही मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये सब भक्त मन ही जानता है जो शब्दों से कथ्य नहीं है, लेखनी से लिखित नहीं है।

शिष्यों को वे शिक्षा देते हैं कि– साधक के दो पंख होते है ज्ञान और आचरण। इन दोनों पंखों के सहारे तुम असीम अनंत, अविनाशी, अमृत सुख को प्राप्त कर सकते हो। अविनाशी, अमृतपद को प्राप्त करना ही मुख्य लक्ष्य होना चाहिए तभी सफलतायें तुम्हारी सहचरी बनेंगी। संकीर्णता, स्वार्थ में मत फंसना क्योंकि स्वार्थ हेय है त्याज्य है। परमार्थ ही उपादेय है। सच्चा ज्ञान वही है जो मानवीय करूणा में परिणत हो जाये।

गुरूदेव ने वात्सल्य, एकता, संगठन के जल से समाजरूपी बगिया को सींचा है। भक्तों के मन पर आचार्य श्री के वात्सल्य भरे व्यवहार की गहरी छाप है।

सही अर्थोमें, वास्तविकरूप से निष्कर्ष के तौर पर आचार्य गुरुवर एक युग निर्माता महान् पुरुष हैं, जैन धर्म को उन्होंने जन धर्म बना दिया है, वे जैनधर्म को विज्ञान से जोड़कर यह कहते हैं कि विज्ञान तो आंशिक धर्म है लेकिन जैन धर्म पूर्ण धर्म व पूर्ण विज्ञान है। इसीलिए जनता इन्हें वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी जी गुरूदेव कहकर पुकारती है।





# मेरी लेखनी के दो शब्द

आर्यिका ऋद्धिश्री

**"अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया**
**चक्षुरोन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरूवे नमः"**

अज्ञानरूपी अंधकार को जो ज्ञान की अंजन शलाका से खोल देता है अर्थात् जो प्रकाश दिखाता है वही गुरु होता है। सभी समुद्रों की स्याही बनाकर, सम्पूर्ण जंगलों के वृक्षों की लेखनी बनाकर, समस्त पृथ्वी को कागज बनाकर भी गुरु के गुणों को लिखने का प्रयास किया जाये फिर भी वह प्रयास पूर्णरूप में सफल नहीं होता क्योंकि गुरू के अंदर इतने गुण होते हैं कि उन गुणों का वर्णन करना कठिनतम कार्य है।

अभीक्षण ज्ञानोपयोगी, सिद्धान्त चक्रवर्ती, ज्ञान–विज्ञान दिवाकर, पूज्य कनकनंदीजी गुरूदेव जो सतत् ज्ञान ध्यान, लेखन, अध्ययन में रत रहते हैं, स्व से अधिक चिंता जिन्हें पर की रहती है पर पीड़ा–दुःखों को समझने वाले एवं सभी प्राणियों के दुःख–पीडा को मिटाने के लिए जो छोटी अवस्था बाल्यावस्था से लगे हुए हैं और आज भी कठिन पुरूषार्थ में लगे हुए हैं कि सुप्त आत्मायें ज्ञान का प्रकाश पाकर पुनः जगें इसीलिए गुरूदेव की ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा कुशल लेखनी से इतने कम समय में बड़े–बड़े गूढ़, सूक्ष्म, विषद सभी भारतीय, पाश्चात्य पुस्तकों के जैन–जैनेतर प्रामाणिक गाथा सूत्रों के द्वारा छोटी पुस्तक से लेकर बड़े–बड़े ग्रंथ लिखे गये हैं। वैसे देखा जाता है कि इस भारत देश में सत्साहित्य की खूब भरमार थी और अभी भी है फिर भी उस अपार ज्ञान का कोई ढोस कदम परिलक्षित नहीं है। इस ज्ञान को जीवन में जोड़ने के लिए पूज्य गुरूदेव पहले प्रयास करते हैं यानि आज की बाल, युवा पीढी जो ज्ञान पाकर भी विक्षुब्ध, अशांत, परावलंबी, अंधी रूढ़ीयों में जकड़ी हुई है उन सभी अंधी रूढ़ी परम्पराओं को सुसंस्कारों की शिक्षा से शिक्षित करके व्यक्ति के जीवन में सामान्य ज्ञान का शोध–बोध कराके शिविर–संगोष्ठी, प्रवचन के माध्यम से करते हैं।

गुरूदेव की लेखनक्रिया, शिक्षणपद्धति, प्रवचनकला आदि क्रियाओं के पीछे मुख्य लक्ष्य, उद्देश्य यही है कि सभी प्राणी सत्य तथ्य का बोध करें, अंधी रूढिगत परम्पराओं को जाने, माने, पहिचाने एवं बाह्य ढोंग दिखावे से दूर होकर वास्तविक

अन्तरंग परिणामों को विशुद्ध बनायें। क्योंकि आज का प्रत्येक प्राणी दुःखी अशांत इसीलिए नजर आ रहा है कि वह बाह्य ढोंग दिखावे में अपनी श्रेष्ठता मानता है। इस बाह्य ढोंग दिखावे का निराकरण शिक्षा, सुसंस्कारों द्वारा ही हो सकता है। इस शिक्षा के वास्तविक स्वरूप को समझाने के लिए गुरुदेव विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी करते हैं। जिससे सही शिक्षा प्राप्त करके मानव अपने सही लक्ष्यों को पहिचान सके एवं अपने उज्ज्वल जीवन का निर्माण कर सके।

सभी के उज्ज्वल जीवन का निर्माण हो, अज्ञानता का अंधकार विघट करके ज्ञान का प्रकाश जगे एवं सभी के जीवन में सुख-शांति के पुष्प खिलें ऐसी शुभ मंगल पवित्र भावना के साथ गुरुदेव के शुभ आशीष की छाया के तले मेरे जीवन का कल्याण हो, सम्यक् दर्शन, ज्ञान की उपलब्धि पाकर इस स्त्री पर्याय से छुटकारा प्राप्त करके सिद्ध शिला को प्राप्त करूँ ऐसी मेरी गुरुचरणों में अनुनय विनय है।

आचार्यश्री के विभिन्न स्थलों पर दिये गये प्रवचनों का सार संग्रहीत करके सुंदर छोटा गुलदस्ता तैयार किया है। सभी इस गुलदस्ते के सुमनों से अपने जीवन को महकायें इसी शुभ भावना के साथ।

***प्रशिक्षण शिविर में उदयपुर नगर परिषद के सभापति श्री युधिष्ठिर कुमावत को आशीर्वाद सहित शास्त्र प्रदान करते हुए आ. श्री कनकनंदीजी***

## धर्म-दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

### समर्पित कार्यकर्ता शिविर आयड, उदयपुर

*(सानिध्य एवं प्रशिक्षक आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ)*

दिनांक 18-9-2000 से 23-9-2000

स्थान : चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन धर्मशाला आयड़

| क्र. | नाम शिविरार्थी मय पता | शैक्षणिक योग्यता | दूरभाष | कार्यरत विभाग |
|---|---|---|---|---|
| 1. | श्री डॉ. नारायणलालजी कच्छारा 55, रविन्द्रनगर उदयपुर | पी.एच.डी. | 491422 | सेवा निवृत्त आचार्य निदेशक |
| 2. | श्री हनुमानसिंह बडिया, 79, सी., अम्बामाता स्कीम उदयपुर | एम.ए. (समाजशास्त्र) | 431640<br>430023 | सेवा निवृत्त सह-आचार्य, समाजशास्त्र |
| 3. | श्री अमृतलालजी जैन 4/304 अशोकनगर रोड नं.4 उदयपुर | स्नातक, समाज सेवा-विद् तृ.वर्ष शिक्षण आरएसएस | 413332 | सेवा निवृत्त प्रबन्धक भा.जीवन बीमा निगम |
| 4. | श्री डॉ. महावीर प्रसाद जैन 128,अशोकनगर उदयपुर | एम.ए. इतिहास | 414081<br>412746 | से.नि.उपाचार्य मीरा कन्या म.वि. |
| 5. | श्री कुन्थुकुमार जैन 5, आदिनाथ कॉलोनी, युनि. रोड, केशवनगर, उदयपुर | मेट्रिक | 521342 | से.नि. व्यवसायी |
| 6. | श्री भूरीलाल जैन 23, टेगोर नगर, हिरणमगरी से.नं.4, उदयपुर | हायर सेकन्डरी | 460930 | निरीक्षक भूप्रबंध विभाग, उदयपुर |
| 7. | श्री हीरालालजी जैन 27 एकलिंग कोलोनी, हिरणमगरी, से.नं.3, उदयपुर | डिप.इन मेकेनिकल इन्जी. | 460099 | से.नि. सहायक अभियन्ता सिचाई विभाग |
| 8. | श्री शंकरलालजी खंडवा 1 व 14 के पास गायत्री नगर हिरणमगरी से.नं. 5 उदयपुर | एम.ए. समाज शास्त्र राजनीति शास्त्र,बीएड | 464969 | से.नि. प्रधानाचार्य |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 9. श्री संतोषकुमार चित्तोड़ा<br>35, गोकुलपुरा उत्तरी आयड<br>उदयपुर | बी.ए.आर.एन.सी. | 418205 | से.नि. कम्पाउण्डर |
| 10. श्री कनकमलजी हाडोतिया<br>292, हिरणमगरी,से.नं.4<br>उदयपुर | एम.ए. (भूगोल) | 460812 | सेवारत अध्यापक |
| 11 श्री प्रतापसिंह चित्तोड़ा<br>इन्द्रभवन, गोकुलपुरा<br>उत्तरी आयड, उदयपुर | मेट्रिक | 418206 | सेवारत जनदाय<br>विभाग |
| 12 श्री छोटुलालजी चित्तोड़ा<br>121, उत्तरी आयड<br>उदयपुर | पी.यु.सी. सायन्स<br>डिप.इले.इन्जि. | 413565 | सेवारत प्रावेधिक<br>शिक्षा विभाग |
| 13 श्री सोहनलालजी देवडा<br>586, हिरणमगरी<br>से.नं.4, उदयपुर | मेट्रिक, एस.टी.सी. | 461551 | से.नि. अध्यापक |
| 14 श्री विमल गोधा<br>52, अशोकनगर, उदयपुर | डिप.सिविल इन्जि. | 414186 | पांच प्रतिमाधारी<br>सामाजिक कार्यकर |
| 15 श्री लक्ष्मीलाल दोशी<br>एल–3/56, जयश्री कॉलोनी<br>धूलकोट, उदयपुर | एम.एस.सी.एम.एल. | 409472 | व्याख्याता<br>बी.एन. स्कूल<br>उदयपुर |
| 16 श्री राजमल लोलावत<br>6 ब/3 रामसिंह की वाडी<br>हिरणमगरी, से.नं. 11<br>उदयपुर | बी.ए.एल.एल.बी.<br>डी.एल.एल. | 483115 | से.नि. सुपरवाइजर<br>हिन्दुस्तान झिंक<br>उदयपुर |
| 17 श्री ब्रजलाल जैन<br>18, गोकुलपुरा, उत्तरी आयड<br>उदयपुर | साहित्य रत्न<br>एस.टी.सी. | 410934 | से.नि. अध्यापक |

*आचार्य श्री के इस मानवतावादी संस्कृति के प्रचार–प्रसार में तन–मन से समर्पित कार्यकर्ता ही सच्चे धर्म के सेवक व जन कल्याण को वेग देने वाले हैं। आप सब इस यज्ञ में अपनी सेवा की आहुति देकर सहयोगी बने।*





## धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
## (आचार्य श्री कनकनंदीजी द्वारा आर्शीवाद प्राप्त) उदयपुर

# *संस्थान की उदयपुर शाखा के कार्यक्रम*

1. **व्यसन मुक्ति** – तम्बाकू, गुटका, बीड़ी, सिगरेट, नशीले पदार्थ, मांसाहार, मदिरापान, जुआँ आदि व्यसनों से मुक्ति हेतु प्रयास।
2. **आगम साहित्य सेवा** – जैन आगम व सद्साहित्य का प्रचार प्रसार।
3. **वनवासी समग्र विकास** – उपेक्षित वनवासी समाज के विकास के लिए विभिन्न कार्य।
4. **शैक्षिक उन्नयन कार्यो में सहकार** – समाज द्वारा किये जा रहे शैक्षिक उन्नयन कार्यो में सहकार।
5. **दहेज प्रथा** – दहेज प्रथा के विरोध में जन जागरण।
6. **मृत्यु भोज** – अविवेकपूर्ण मृत्यु भोज बन्द करना।
7. **बाल विवाह** – बाल विवाह का विरोध करना तथा उन्हें रोकना।
8. **भ्रूण हत्या** – भ्रूण हत्या के विरोध में जनमत तैयार करना तथा लोगों को शिक्षित करना।
9. **आडम्बर व अपव्यय का विरोध** – विवाह तथा अन्य अवसरों पर आडम्बर और अपव्यय का विरोध करना।
10. **प्रचार–प्रसार** – संस्थान के कार्यों का लोक प्रेरणा हेतु प्रचार प्रसार करना।
11. **नियमित वैठक तथा प्रगति की समीक्षा** – संस्थान की नियमित बैठक में कार्यों की समीक्षा कर योजनाओं की निरन्तर प्रगति सुनिश्चित करना।

## *गुरु सेवा का फल*

**"उच्चै र्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।**
**भक्तैः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु॥15॥"**

**गुरुओं को प्रणाम करने से उच्च गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं की पूजा होती है। भक्ति करने से कामदेव सदृश्य लावण्य युक्त सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती है।**

**(श्रावकाचार – समन्तभद्राचार्य)**

# अनुक्रमणिका


| क्रम | विषय | पृ.सं. |
|---|---|---|
| 1. | देश में बढ़ रही अराजकता को रोकने में महावीर के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं। | 1 |
| 2. | गुरू के माध्यम से ही लौकिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव। | 8 |
| 3. | आत्मजयी से ही वीरातिवीर वनने की कला प्रकट होती है। | 12 |
| 4. | विश्व में महानतम प्राणी : मनुष्य | 16 |
| 5. | चातुर्मास की उपयोगिता कव और कैसे? | 20 |
| 6. | भावों की पवित्रता एवं दूसरों से सद्व्यवहार ही धर्म है। | 22 |
| 7. | गर्भपात एक – पाप चार | 28 |
| 8. | महान् भारत के सपूतो! पुनः जगो! | 33 |
| 9. | समृद्धि का मूलमंत्र – आपसी संगठन | 40 |


*आ. श्री कनकनंदीजी के ग्रन्थों का विमोचन करते हुए ग.आ. श्री कुन्थुसागरजी गुरुदेव*

# 1 देश में बढ़ रही अराजकता को रोकने में महावीर के सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है

**नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूत कलिलात्मनैः।**
**सालोकानां त्रिलोकानां यद् विद्या दर्पणायते॥**

महावीर जयन्ती के महान् अवसर पर परम पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य, सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य रत्न श्री कनकनंदीजी गुरूदेव ने प्रातःकालीन प्रभात फेरी के उपरांत उदयपुर (सवीना) के अपार जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा कि हम सभी महावीर जयन्ती मनाते हैं, इसका उद्देश्य क्या है? पर्व का मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए? इस उद्देश्य को हम सभी को देखना चाहिए। जिस प्रक्रिया से, उपायों से, साधनों से, पुरूषार्थ की कठोर साधना से भगवान् महावीर पतित से पावन, जानवर से भगवान्, हीयमान से वर्द्धमान बनें। उसी प्रकार हमें भी उनके आदर्शों के अनुसार पुरूषार्थ करके पतित से पावन, जानवर से भगवान्, हीयमान से वर्द्धमान,खुद से खुदा, Dog से God बनना चाहिये।

संसार के हर प्राणी की यही जीवनी है कि वह अनादि काल से इस अनंत संसार में भ्रमण कर रहा है और अपने सच्चे शुद्ध वस्तुस्वरूप को नहीं जान पा रहा हैं। भगवान् महावीर ने वस्तु स्वरूप को जानने के लिए गृहस्थधर्म व मुनिधर्म का उपदेश दिया एवं अहिंसा / सत्य / अस्तेय अपरिग्रह / ब्रह्मचर्य / अनेकान्त स्याद्वाद सिद्धान्त, अणुसिद्धान्त, पर्यावरण सिद्धान्त, नारी जगत के उद्धार के लिए विश्व क्रांति एवं धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक कुरीतियों का उन्मूलन / परिशोधन /परिष्कार किया उनकी महानता के साथ-साथ हमें उनके पहले की पापमयी प्रवृत्तियों को भी देखना चाहिए कि पहले वे कितने पतित, अपावन, पापी, क्रूर, निकृष्ट थे। उनकी पिछली जीवन कृति का आंकलन करें तो पहले भगवान् आदिनाथ के पौत्र एवं भरत चक्रवर्ती के पुत्र थे एवं भगवान् आदिनाथ से दीक्षित होकर मुनि के रूप में समवशरण में विराजित थे। एक दिन भरत चक्रवर्ती ने भगवान् आदिनाथ से प्रश्न किया कि हे भगवन! आपके समान हमारे वंश में आगे भी कोई तीर्थंकर बनेगा? तो भगवान् आदिनाथ ने कहा कि हाँ, तेरा ही पुत्र जो मरीचिकुमार है वह इस भरतक्षेत्र का अन्तिम तीर्थंकर बनेगा। इतना सुनते ही मरीचिकुमार को घमण्ड, अहंकार आ गया कि मैं अन्तिम तीर्थंकर बनूँगा और

उन्होंने अपने दादा के विरुद्ध 363 अन्य मत- मतान्तरों की स्थापना करके अपना नया धर्म चलाया। इस मिथ्या मान्यता के चलाने के कारण उन्हें ढ़ाई हजार भव आम का वृक्ष 20 हजार भव, नीम 90 हजार वर्ष, केला 60 हजार भव वेश्या 5 हजार भव, शिकारी 20 हजार भव, हाथी 20 हजार भव गधा, तीन करोड़ भव कुत्ता, 20 करोड़ स्त्री, 8 करोड़ भव घोड़ा, 60 करोड भव नपुंसक, 9 करोड भव धोबी, 6 करोड़ भव गर्भपात, 8 करोड़ भव बिल्ली, 5 करोड़ भव शिकारी आदि पर्यायों में अनंत कष्टों को उठाते हुए संसार परिभ्रमण करता हुआ घूमता रहा। यह एक थर्मामीटर है घमण्ड, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, कषाय, मान, माया, लोभ आदि की दुर्दशा का कुफल है। जिसको आज हम भगवान् महावीर मानकर पूजते हैं उनका भूत कैसा था इस बात पर हमें गम्भीरता से चिंतन,मनन करना चाहिये।

कर्म सिद्धान्त ऐसा ही है As you sow so you reep जैसा करोगे वैसा ही फल मिलेगा। एक ही बीज एक पेड़ बनकर अनेकों फल, पत्र लकड़ियों को पैदा कर देता है, वैसे ही एक पाप अनेकों पापों को जन्म देता हैं। हमारे किये कार्यों की सजा परिवार, समाज, राष्ट्र, जज, न्यायालय आदि तो दे या न भी दे लेकिन हमारे कर्म हमें अवश्य ही फल देंगे सुख-दुःख का वेदन करायेंगे।

मरीचिकुमार ने केवल एक ही पाप किया घमण्ड, अहंकार का उसे कितना बडा कष्ट मिला और संसार की अनेकों यातनायें सहन करते हुए एक बार जीवित हिरन को ही मारकर शेर की पर्याय में उसका भक्षण कर रहा था तब आकाश मार्ग से दो चारण ऋद्धि धारी मुनि उसी मार्ग से गुजर रहे थे तब उन्होंने शेर की पर्याय में जीवित हिरन को खाते हुए देख कर शेर को सम्बोधन किया। हे वनराज! आप विचार करो पहले तुम क्या थे? क्या बन गये और अब आपको क्या बनना है? क्या करना है पहले तुम भगवान् आदिनाथ के पोता एवं भरत चक्रवर्ती के पुत्र थे लेकिन एक अहंकार, घमण्ड के कारण तुम्हें संसार की अनेकों यातनाओं को सहन करना पड़ा अब तुम्हारे अंदर वह शक्ति छिपी हुई है कि आप आगामी भविष्यकाल में इस भरत क्षेत्र के अंतिम 24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर बनोगे। इतना सुनते ही वह वनराज उस हिरन को छोड़कर प्रायश्चित्त स्वरूप अश्रुपात करता हुआ चारण ऋद्धिधारी युगल मुनिराजों के चरण कमलों में एक देश व्रत ग्रहण कर लेता है एवं जंगल के सभी प्राणियों के साथ समतामय





परिणाम रखकर जीवन यापन करने लगता है। उसकी पुण्य प्रकृतियाँ जागृत हो उठीं। आचार्यों ने कहा है कि जब सत्ता में पाप प्रकृतियाँ होती हैं तब पुण्य प्रकृतियाँ सुप्त अवस्था में रहती हैं। पुण्य प्रकृतियों को उद्घाटित होने का समय नहीं मिलता और जब पुण्य प्रकृतियों का सत्व अधिक होता है तब पाप प्रकृतियाँ अपना फल देने में कमजोर पड़ती हैं जैसे कि मरीचिकुमार के भव में उसके ही दादा, पिता आदि सगे संबंधी सभी पुण्यवान महामानव थे। लेकिन उसकी सत्ता में पाप प्रकृतियाँ अधिक होने से पुण्य ने उसका साथ नहीं दिया लेकिन जब शेर की पर्याय में हिरन मारकर खा रहा था ऐसी पतित अवस्था में दो मुनियों के सम्बोधन से ही पुण्य प्रकृतियाँ जागृत हो उठीं और शेर की पर्याय से उनके भव सुधरने लगे। अर्थात् जब खोटा भाव था तब समवशरण में मुनिरूप में भी कल्याण नहीं हुआ। जब पुण्य जागृत हुआ तब दो मुनियों के उपदेश से ही सुधार/उद्धार हो गया। हीयमान से वर्द्धमान बन गये। स्वर्ग में जाकर देव हुए।

अगर हम भगवान् महावीर का उज्ज्वल पक्ष को देखेंगे तो उद्धार नहीं होगा। भगवान् की भूत, भविष्यत जीवनी ही दर्पण हैं। हम दर्पण को क्यों देखते हैं? स्वयं के चेहरे को देखने के लिए या अन्य का चेहरा देखने के लिए? इसी प्रकार महापुरुषों की जीवनी दर्पणवत् होती है यानि उनके भूत भविष्य की अच्छाई-बुराई को देखकर हम शिक्षा ग्रहण करें कि पापों का फल क्या है? पुण्य का फल क्या है? इन सभी बातों को देखकर हम अपना साक्षात्कार करें। क्योंकि जो महान् पुरुष होते हैं वे महान पुरुषों के पथ का अनुगमन करते हैं।

**"महाजन येन गताः स पंथा"** इसलिए हमें भी महान् बनना है तो भगवान् महावीर के महान् मार्ग का अनुसरण करें, समता को धारण करें, अहंकार, घमण्ड, मान, माया, क्रोध आदि बुराईयों का परित्याग करें। हमारे अंदर अनंत शक्ति है। हम में और भगवान् में इतना ही अंतर है कि भगवान् की अनंत शक्ति जागृत है और हमारी सुप्त Dog से God बनना है। ज्यादा अंतर नहीं है। इन दोनों शब्दों में बस उल्टे को सीधा करना है। हम उल्टे चल रहे हैं, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता अहंकारिता, मिथ्याज्ञान में चल रहे हैं जबकि भगवान् का पथ इससे परे है बस इतना ही अंतर है कि हमारी अनंत शक्तियाँ बिखरी हुई हैं और भगवान् की एक रूप में केन्द्रित हैं। जिस प्रकार एक बड़े पर्वत को हम एक टन के बड़े पत्थर से ही तोड़ना चाहे तो नहीं टूटेगा। लेकिन एक छोटे से अणुबम से वह विशाल पत्थर

टूट जाता है यह कैसे क्योंकि विज्ञान शास्त्र के अनुसार उस छोटे से अणुबम में समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके एक जगह गठित किया है। इसी प्रकार हमारी साधना–सिद्धि के द्वारा हमारी बिखरी हुई ज्ञान रश्मियाँ जब एक लक्ष्य पर आकर केन्द्रित हो जायेंगी उसी दिन हम भी अरहन्त, सिद्ध बन जायेंगे।

**''जिस करनी से हम हुए अरहन्त सिद्ध महान्।**
**उस करनी को तुम करो हम तुम दोनों समान॥''**

इस प्रकार हम अपनी शक्ति–भक्ति को पहिचाने ताकि मुक्ति का मार्ग प्रशस्त बनें।

शेर की पर्याय में उस शेर ने अपनी शक्ति को पहिचाना और आगे चलकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन माँ त्रिशला के गर्भ से इस भारत की वसुन्धरा पर जन्म लिया। भगवान् गर्भ से ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान के धारी थे। श्वेताम्बर कथा के अनुसार– ''जब भगवान् माँ के गर्भ में थे तब माँ को गर्भ संबंधी कोई कष्टपीड़ा अन्य माँताओं की तरह नहीं हुई तो त्रिशला को संशय होने लगा कि मेरा गर्भ नष्ट तो नहीं हो गया। लेकिन यह शंका भगवान् को गर्भ में ही अनुभव हो गयी और उन्होंने गर्भ के अंदर ही अपने पैर को सीधा कर दिया जिससे माँ को अनुभव हो गया कि मेरा गर्भ सुरक्षित हैं। इस प्रकार भगवान ने शुभ मुहूर्त, शुभलग्न, वार नक्षत्र में जन्म लिया। उनके जन्मोत्सव की इस वसुन्धरा ने तो क्या ऊर्ध्वलोक में देवताओं ने खुशियाँ मनाई एवं सुमेरुपर्वत पर ले जाकर 100 बड़े–बड़े कलशों से अभिषेक किया। अभिषेक के पूर्व सौधर्म इन्द्र को चिंता हुई कि अभी तक जो तीर्थंकर हुए वह तो बड़े कायवाले थे। लेकिन वीरप्रभू तो छोटे हैं इतने बड़े कलशों का वहन सहन कर पायेंगे या नहीं/इतनी शंका होते ही भगवान् को मालूम हो जाता है और वे अपने पैर के अंगूठें को थोड़ा सा ही दबाते हैं कि सुमेरू पर्वत जो एक लाख योजन बड़ा है हिलने लगता है। तब सौधर्म इन्द्र अपनी गलती का प्रायश्चित्त माँगकर क्षमा चाहता है एवं अपनी निंदा आलोचना करता है। इसप्रकार भगवान् जन्म से ही अनंत शक्ति के पुंज थे। उन्होंने अपने जीवन में कई महान कार्य करके अपने नामों की सार्थक पदवियाँ प्राप्त कीं। एक बार स्वर्ग में चर्चा चली कि इस मध्यलोक में सबसे बलवान् कौन है? तब एक देव ने कहा – वर्द्धमान् तब दूसरा देव उनकी परीक्षा एक विकराल विषधर का रूप धारण करके लेने आया। सभी बच्चे विकराल विषधर को देखकर भाग जाते हैं





लेकिन वर्द्धमान ने निडर होकर उस विषधर का दमन किया। इस वीरता से खुश होकर उस देव ने वीर नाम दिया। इसीप्रकार वर्द्धमान ने एक पागल हाथी को वश में करके अतिवीर नाम पाया एवं रुद्र के द्वारा घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त करके महावीर नाम पाया। दो चारण ऋषियों की शंका का समाधान वर्द्धमान का चेहरा देखते ही हो गया इसीलिए 'सन्मति' नाम पाया। वैसे उनका वास्तविक बचपन का नाम वर्द्धमान था क्योंकि उनके गर्भ में आने से पूर्व ही धन, धान्य, सुख, समृद्धि की बहुत ही वृद्धि हुई थी इसीलिए उनका नाम वर्द्धमान था।

अपने नाम के अनुसार ही वर्द्धमान ने कार्य किये/उनका चिंतन गहन, विचारशील होता था। इसप्रकार गहन, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक चिंतन को देखकर माँ बाप को शंका होती थी कि वर्द्धमान कहीं वैरागी न हो जाये इसीलिए उन्होंने शादी का प्रस्ताव वर्द्धमान के सामने रखा लेकिन वर्द्धमान ने शादी करने के लिए स्वीकृति नहीं दी और बाल ब्रह्मचारी रहकर दुनियाँ में फैली अराजकता, हिंसा का ताण्डव, नारी–पतन, यज्ञ–पशु–नरबलि आदि विसंगतियों का कठिन पुरूषार्थ के माध्यम से परिशोधन किया।

दुष्यन्त के पुत्र भरत शादी के पहले बाल्यकाल में शेर के बच्चों के साथ क्रीड़ा करते थे लेकिन शादी के बाद वह शक्ति नष्ट हो जाती है। जो काम विजयी होता है वही वीरातिवीर होता है। ऐसे कामदेव को वर्द्धमान कुमार ने अपने वश में करके वीरातिवीर बनकर केवल्यज्ञान–अनंत ज्ञान को प्राप्त किया। केवलज्ञान प्रगट हो जाने पर पात्रता के अभाव में 66 दिन तक वीर प्रभू की वाणी नहीं खिरी। जब इतने समय तक वाणी नहीं खिरी तब सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान से जानकर कि किस में वाणी झेलने की पात्रता है। इन्द्रभूति गौतम को प्रश्न पूछने के माध्यम से समवशरण में उपस्थित किया। उस इन्द्रभूति गौतम का मानस्तम्भ देखकर समस्त मान गलित हो जाता है, मिथ्या अंधकार दूर हट जाता है, सम्यक्ज्ञान प्रगट हो जाता है और दिगम्बर मुनि बन जाते हैं। तब भगवान् की वाणी ओंकार ध्वनि के साथ 718 भाषाओं में सात प्रकार के उत्तरों के साथ खिरती हैं अर्थात् (1) अस्ति, (2) नास्ति, (3) अवक्तव्य, (4) अस्ति अवक्तव्य, (5) नास्ति अवक्तव्य, (6) अस्ति–नास्ति (7) अस्तिनास्ति अवक्तव्य इस प्रकार 718 x 7 = 5026 इतनी पद्धति के साथ भगवान से प्रश्नों का उत्तर मिलता था।

भगवान् महावीर ने पर्यावरण सिद्धान्त, साम्यवाद (समाजवाद) नीतिशास्त्र,

गणितशास्त्र, अनेकांतवाद आदि अनेकों सिद्धान्त दिये। वर्तमान युग में अगर इन सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जाये तो सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी कष्ट, संकट, आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार, अराजकता, झगड़े–झंझट दिखाई नहीं देंगे। भगवान् महावीर का अनेकान्त, स्याद्वाद, अपरिग्रहवाद आदि सिद्धान्त ऐसे सिद्धान्त हैं कि जहाँ लड़ाई झगड़े स्वयमेव नष्ट हो सकते हैं क्योंकि प्रत्येक घटना किसी न किसी अपेक्षा–दृष्टि से सिद्ध हो सकती हैं। कहीं भी झूठ आदि का दोष नहीं आता। लेकिन आचार्य गुरुदेव श्री कनकनंदीजी ने बड़े ही दुःख व खेद के साथ अपनी अन्तरंग पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा कि "हमारे भारत देश में इतनी महान् विभूतियाँ थीं कि जिनके एक आदर्श के एक ही सिद्धान्त को अगर हम अपने जीवन में साकार करते तो हम इतने अशांत दुःखी नहीं होते। आज हमारी कथनी करनी में बहुत अंतर आ गया है। हम महान विभूतियों का नाम लेते हैं। उनके नाम के बड़े–बड़े मंदिर–धर्मशाला बनवाते हैं लेकिन मंदिर में एक साथ प्रेमपूर्वक सहनशील होकर बैठ नहीं सकते। अन्य स्थानों पर एक बार प्रेमपूर्वक रह लेंगे लेकिन धार्मिक स्थानों पर एवं धर्म की आड़ में अक्सर दंगे लड़ाई झगड़े करते हैं। जबकि महावीर के समय में तो जाति विरोधी जीव भी एक साथ खेलकूद, आनंद के साथ आपस में मित्रता का भाव धारण करके विचरण करते थे। वास्तव में यही सच्चे शुभ, शुद्ध, समतामयी परिणामों का प्रभाव हैं। आज हमारे द्वारा इतना दान दिया जाता है, ज्ञान की संगोष्ठियाँ होती हैं ,मंदिर–धर्मशालायें बनायी जाती हैं, धर्म के नाम पर बड़ी–बड़ी गूढ़ तत्व चर्चायें होती हैं लेकिन देखा जाता है कि एक परिवार के चार सगे भाई बहिन भी आपस में प्रेमपूर्वक नहीं रह पाते हैं। ऐसा क्यों ? आज दीपक तले अंधेरा नहीं, बल्कि सूर्य तले अंधेरा हो रहा है। आज जैन लोग सबसे अधिक भ्रष्ट हो रहे हैं। अगर अन्य देशों से गणना की जाये तो सबसे ज्यादा भ्रष्ट भारत देश, उस में भी सबसे अधिक जैनी। क्योंकि जैनियों में आपस में हर छोटी–छोटी बातों के कारण बड़े–बड़े झगड़े होते हैं। "पानी पीवे छानकर जीव मारे जानकर" यह सूक्ति आज के जैनी में चरितार्थ हो रही है। महावीर जयन्ती पर खूब नारें लगायेगें "जीओ और जीने दो", "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" कहेंगे, बड़े–बड़े झगड़े, बेनर, झाकियाँ प्रस्तुत करेंगे लेकिन आचरण में रंचमात्र भी नहीं है। हाथमें कमर में पट्टा तो लैदर का ही होगा। नेलपोलिश, लिपस्टिक तो जलूस में महिलायें लगायेगी ही। क्योंकि बाहरी





दिखावा आडम्बर अधिक है। जो बाहरी वस्तु देखेगा वह अपने अन्तरंग को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। आज हम बाह्य आडम्बर का अधिक प्रदर्शन करते हैं इसीलिए अन्तरंग में सुख, शांति का प्रादुर्भाव / दृष्टिगोचर नहीं होता है।

हमारी सभ्यता–संस्कृति मर चुकी है इस बाहरी दिखावे के कारण। इस सभ्यता संस्कृति को पुनः कैसे प्राणवान् बनाया जाय ? यह आज के युग का एक बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। लेकिन फिर भी थैरो की पुस्तक के अनुसार–**"अच्छे में भी बुरे होते है, बुरे में भी अच्छे होते हैं।"**

यह बात बताते हुए आचार्य भगवन् श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने मेवाड़ प्रांत की सच्ची भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, एकता, सरलता आदि गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा कि भारत के सम्पूर्ण प्रांत लगभग भ्रष्टाचार, अनैतिकता के गुलाम हो चुके हैं लेकिन उसमें भी राजस्थान प्रांत काफी सीमा तक ठीक हैं और उसमें भी मेवाड़ प्रांत की शान–बान–अभिमान जिस प्रकार महाराणा प्रताप में थे उसी प्रकार आज भी यहाँ के प्रत्येक स्त्री, पुरुष बच्चों में विद्यमान हैं। पन्नाधाय ने एक धाय होकर भी अपने पुत्र के मोह को त्याग कर अपने देश की रक्षा की लेकिन उस मानसिंह की शिक्षा से क्या प्रयोजन जिसने शत्रुसेना में घुसकर अपने देश को पराजित करने में अकबर को पूर्ण सहयोग दिया। मेवाड़ की भक्ति सच्ची श्रद्धा समर्पण की शक्ति है। आज तक कनकनंदीजी को कोई नही झुका पाया लेकिन मेवाड़ की सच्ची भक्ति ने उन्हें भी झुका दिया। वास्तव में ठीक ही है कि **"झुकती है दुनियाँ झुकाने वाला चाहिए"**

इस प्रकार मेवाड़ के प्राचीन गौरवमयी इतिहास का विश्लेषण करते हुए अन्तिम शब्दों में आचार्यश्री ने निष्कर्ष के रूप में कहा कि "आज के बच्चों को सुसंस्कारित किया जाये, शिक्षा के स्तर में सार्वभौम रूप से सुधार व विकास किया जाय ताकि हमारी नयी बाल, युवा पीढ़ी संस्कारों से सुसज्जित होकर राष्ट्र का, विश्व का, देश का, समाज का, परिवार का कल्याण कर सके। जिस प्रकार सुख शांति प्राप्त करने के लिए मंदिर, मठ, धर्मशालाओं का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार बच्चों को सुसंस्कारों से सुसज्जित करने के लिए शिविर, पाठशाला, विद्यालय आदि का निर्माण करना चाहिए। आज के छोटे बच्चे ही कल बड़े होकर परिवार की, समाज की, देशकी, विश्व की बागडोर संभालने में कामयाब होंगे।" इस महावीर जयन्ती को मनाने की सार्थकता तभी सिद्ध होगी जब हम अपने बाह्य आडम्बर

को छोड़कर अन्तरंग में देखने की कोशिश करें up to date ना बनें बल्कि up to date की सही सार्थकता समझें कि हमारे अंदर में कितनी शक्ति है उस सुप्त शक्ति को अन्तरंग में खोजें एवं महावीर के आदर्श सिद्धांतों को आचरण में क्रियान्वित करें तो यह हमारा गारत-भारत फिर से सोने की चिड़िया वाला भारत बन सकता है, प्रत्येक घर में रामराज्य की स्थापना हो सकती हैं। प्रत्येक प्राणी महावीर बन सकता है।

आचार्य श्री की अमृतवाणी के समापन के उपरांत डॉ. नारायण लाल कछारा ने कहा कि ''भगवान् महावीर जिस मार्ग पर चले वह मार्ग हैं अपनी आत्मा का परिष्कार।'' हमें अपनी आत्मा का परिष्कार आचार्य भगवन्, वैज्ञानिक धर्माचार्य, भगवान् के पास पहुँचे हुए संत आचार्य रत्न श्री कनकनंदीजी गुरूदेव के मार्गदर्शन व दिग्दर्शन से ही हो सकता हैं क्योंकि आचार्य गुरुदेव का मार्गदर्शन सभी क्षेत्र, सभीधर्म, सभी संप्रदायों की एकता, संगठन को लिए हुए है, न कि एक जैनधर्म को लेकर उनका निर्देशन है। इसीलिए सभी श्रोतागण सज्जन महानुभाव अपने समय का लाभ उठायें और सच्चे सुख शांति का अनुभव करते हुए अपने सही लक्ष्य की पूर्ति करें। तभी महावीर जयंती की व आचार्य श्री की धर्मदेशना की सफलता, सार्थकता, श्रेष्ठता सिद्ध होगी।

# 2 गुरु के माध्यम से ही लौकिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव

उदयपुर गुरूपूर्णिमा पर्व के पावन अवसर पर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, ज्ञान-विज्ञान दिवाकर, वैज्ञानिक धर्माचार्य पूज्य कनकनंदी जी गुरूदेव ने धर्मसभा को सम्बोधित करते हुए कहा किभारत पर्व प्रधान देश है यहाँ पर धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि पर्व मनाये जाते हैं हम पर्व क्यों मनाते है ? पर्व मनाने के उद्देश्य क्या हैं ? इत्यादि बातों की हमें जानकारी होनी चाहिए। आज का पर्व गुरु पूर्णिमा का पर्व है इस पर्व को मनाने का मुख्य कारण यह है कि जिस प्रकार पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा अपनी समस्त कलाओं से पूर्ण अपने उज्ज्वल रूप में प्रकट होकर पूरे आकाश मण्डल में अपनी चाँदनी फैलात हुआ परम शान्तिदायक लगता है उसी प्रकार गुरु भी पूर्णचन्द्रमा के समान षोडश कलाओं से दैदीप्यमान होकर





समस्त शिष्य समुदाय में अपने ज्ञान की शीतलता बिखरते हैं। शिष्यों के चंचल, भटकते मन को सांसारिक आसक्तियों से हटाकर ईश्वर की ओर उन्मुख करते हैं।

गुरूपूर्णिमा के महत्व को समझने के पूर्व हमें गुरु का क्या अर्थ होता है यह समझना चाहिए। गु+रु= 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है तेज, प्रकाश अर्थात् अज्ञान का नाश करने वाला तेज रूप गुरु होता है।

जैन साहित्य में गुरु को ज्ञानाञ्जनरुपी शलाका कहा है

**''अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया**
**चक्षुरून्मिलितं येन तस्मै श्री गुरूवे नमः॥''**

अर्थात् अज्ञानरूपी अंधकार को जो ज्ञान की अंजन रूपी शलाका से खोल देता है अर्थात् जो ज्ञान का प्रकाश दिखाता है वही गुरु है। सद्गुरु ईश्वर से भी महान माने जाते हैं।

**''गुरू ब्रम्हा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।**
**गुरु साक्षाद् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥**
**गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।**
**बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥''**

इस प्रकार जो ज्ञान में, विवेक में, शिक्षा में, दीक्षा में, क्षमा में, दक्षता आदि गुणों में भारी हो, ज्येष्ठ-श्रेष्ठ हो वही सद्गुरु है।

दुनिया में अनेकों लोग भगवान् को, मूर्ति को नहीं मानते लेकिन गुरु का महत्व सभी स्वीकारते हैं। यहाँ तक कि चोर डाकुओं का गुरु-सरदार होता है। जिसके जीवन में गुरु नहीं उसका जीवन शुरू नहीं। धवला ग्रंथ में भगवान् की अपेक्षा पहले गुरु को नमस्कार किया है। यहाँ तक कि जब स्वयं तीर्थंकर भगवान् दीक्षा लेते हैं तब नम सिद्धेभ्यः कहकर सिद्ध भगवान को अपना गुरु मानकर उनकी साक्षी पूर्वक दीक्षा लेते हैं। गुरु के चरणों में चक्रवर्ती भी शीश झुकाता है और गुरु की सेवा आदि कार्य करके उनसे विद्या अर्जन करता है। इस प्रकार सभी मत-मतान्तरों में, धर्मो में गुरु के महत्व की अहम् भूमिका है।

गुरूपूर्णिमा को मनाने का अपने-अपने धर्मों में अलग-अलग महत्व है। जैसे हिन्दू धर्म अनुसार - वेद व्यास जी ने इस दिन 4 वेद की रचना पूर्ण की थी इसीलिए गुरु पूर्णिमा का पर्व मनाकर उन वेदों की पूजन की जाती है।

वैष्णव धर्म के अनुसार इस दिन देवता भी अपने गुरु बृहस्पति की पूजा करते

है इसी लिए इस दिन को गुरु पूर्णिमा कहते हैं। जैनधर्म के अनुसार 12 वर्ष तपस्या पूर्ण करके भगवान् महावीर को केवलज्ञान हो गया और इन्द्र ने समवशरण की रचना कर दी लेकिन 66 दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। वाणी क्यों नहीं खिरी ? क्या भगवान् के ज्ञान में कुछ कमी थी या श्रोता नहीं थे या समवशरण की रचना, व्यवस्था में कोई कमी थी ? नहीं, इन वस्तुओं की कमी नहीं थी बल्कि योग्य पात्र की कमी थी। क्योंकि योग्य पात्र के अभाव में वाणी को झेलेगा कौन ? शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही टिकता है लोहे के पात्र में या अन्य किसी धातु के पात्र में रख देंगे तो वह पात्र फट जायेगा इसी प्रकार भगवान् का उपदेश हर कोई सामान्य व्यक्ति सुन-समझ नहीं सकता क्योंकि जैनधर्म बहुत ही सूक्ष्म एवं गूढ़ है। हम हिन्दी भाषी होने के बावजूद भी हिन्दी में लिखे शास्त्रों के अर्थ को नहीं समझ सकते। फिर इन्द्र ने अवधिज्ञान से सोच विचार करके योग्य पात्र की खोज की तो इन्द्रभूति गौतम को योग्य पात्र समझा। लेकिन वह अभी योग्य नहीं था वह तो नर बलि-पशुबलि तक करता था। उसे अपने ज्ञान का बहुत ही घमण्ड था। सम्यक् विवेक नहीं था। हाँ बुद्धि अवश्य अच्छी थी। लेकिन मेरा अनुभव है कि जो बुद्धिमान् होते है वे अक्सर धूर्त, ढोंगी, दम्भी, ईर्ष्यालु, मायाचारी होते हैं। ऐसे ही वह इन्द्रभूति गौतम था। उसकी बुद्धि के साथ सम्यक् विवेक को जोड़ना था, वह सम्यक् विवेक कैसे जोड़ा जाये तो इन्द्र ने अपना ब्राह्मण का रूप बनाकर उससे एक सूत्र का अर्थ पूछा कि "त्रैकाल्यं द्रव्यं षटकं नव पद सहितं जीव षट्काय लेश्या...." इसका अर्थ बता दो। इस सूत्र को सुनते ही इन्द्रभूति घबरा जाता है कि मैंने 18 पुराण, 4 वेद, सभी शास्त्र पढ़े लेकिन 6 द्रव्य, 9 पदार्थ, 6 लेश्या सहित जीव यह विषय तो कहीं नहीं पढ़ा ये क्या होता है ? लेकिन घमण्डी कभी झुकना नहीं जानता। उसे अपना अपमान होता हुआ नजर आने लगा कि मेरे 500 शिष्य / दुनियां में मेरे ज्ञान का मुकाबला करने वाला दूसरा नहीं, अगर इस सूत्र का उत्तर नहीं दे पाया तो क्या होगा ? अपने यश को सुरक्षित रखने के लिए इन्द्रभूति ने उस वृद्ध ब्राह्मण से कहा- इस सूत्र का उत्तर तुम जैसे वृद्ध को नहीं दूंगा। तुम्हारे गुरु कौन हैं ? उनको दूंगा। मेरे गुरु भगवान् महावीर। चलो तो उन्हीं को दूंगा। बस, ब्राह्मण देवता को तो यही चाहिए था। अंधे को तो दो आंखे चाहिए। ले आये इन्द्रभूति को समवशरण में। समवशरण की रचना, वैभव को देखकर इन्द्रभूति की आँखे खुली की खुली रह गईं। यह कैसी धर्मसभा जहाँ जाति विरोधी जीव भी आपस में मित्रता के साथ बैठे हैं। समवशरण अपने शब्दों





से ही सार्थकता प्रकट कर रहा है। सम + शरण अर्थात् जहाँ समस्त जीवों को समान रूपसे उपदेश सुनने की शरण मिलती हो, सुरक्षा अधिकार स्थान मिलता हो वह होता है समवशरण। इसीलिए समवशरण का दूसरा नाम मैंने 'विश्वधर्म सभा' दिया है।

हर धर्म दया, करुणा, सेवामयी होता है लेकिन जाति विरोधी जीव भी आपस में एक साथ मित्रता प्रेमपूर्वक रहें, देवता, मानव के साथ बैठें यह मैंने किसी भी धर्म के अंदर नहीं पढ़ा। "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" / इको सिस्टम / विश्व मैत्री / अहिंसा / करुणा / जीओ और जीने दो का यह समवशरण साक्षात् ज्वलन्त उदाहरण है। इन्द्रभूति यह सब देख आश्चर्यचकित हो जाता है एवं मानस्तम्भ को देखते ही अपने मान का स्तम्भन कर देता है अर्थात् अपने घमण्ड को त्याग करके भगवान् महावीर के चरणों में गिरकर अपने पापों का प्रायश्चित्त मांगने लगता है। उसका सम्यक् विवेक जागृत हो जाता है, सम्यक् ज्ञान हो जाता है। भगवान् से दिगम्बरी दीक्षा ले लेता है एवं चार ज्ञानों की प्राप्ति हो जाती है। भगवान् के प्रमुख गणधर बन जाते हैं। गणधर बनते ही भगवान् की दिव्यध्वनि 718 भाषाओं में सात प्रकार के उत्तरों के साथ खिरने लग जाती है।

वह दिन आज का ही दिन था। इस दिन इन्द्रभूति गौतम गणधर बनें एवं उन्होंने भगवान् की दिव्य-ध्वनि को झेलकर द्वादशांग वाणी के द्वारा शास्त्रों का सम्पादन किया। इस प्रकार बिना गुरु के अज्ञान का विनाश एवं ज्ञान का प्रकाश नहीं होता। गुरु जीवन्त भगवान् होते हैं। गुरु ही जीवन्त, साक्षात् तीर्थ होते हैं। एक जड़ तीर्थ होता है जैसे सम्मेदशिखर, गिरनार, पावापुर आदि। दूसरा चल तीर्थ होता है जैसे गुरु/क्योंकि जहाँ 2 गुरु के चरण पड़े वह सब तीर्थ बन गये। साधु से गुरु से तीर्थ बना है न कि तीर्थ से गुरु। इसीलिए गुरु तीर्थ से भी महातीर्थ है।

आप सभी का महान् तीव्र पुण्य का उदय है जो कि इस पंचम काल में, कलिकाल में मन चंचल है, ये शरीर अन्न का कीडा है फिर भी ये साधु एक बार खाते हैं ऐसे विचित्र समय में भी आप सभी को इन गुरुओं के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं। यह कहना गलत है कि Old is Gold पहले के समय में दौलतराम जैसे बड़े-बड़े पंडित, विद्वान हो गये लेकिन उनको भी साक्षात् गुरुओं के दर्शन नहीं हुए। आप अपने पुण्य का लाभ उठाइये। इन गुरुओं की संगति से अपना विकास करो, उन्नति करो। गुरुओं से सम्यक् विवेक प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करो तभी गुरु पूर्णिमा मनाने की सफल सार्थकता सिद्ध होगी।

# 3 आत्मजयी से ही वीरातिवीर बनने की कला प्रगट होती है

उदयपुर वीरशासन जयंती के अवसर पर धर्मसभा को संबोधित करते हुए सिद्धान्त चक्रवर्ती, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, वैज्ञानिक धर्माचार्य पूज्य कनकनंदी जी गुरुदेव ने कहा कि वीर शासन जयन्ती यह शब्द हमें क्या बताता है ? अगर हम रहस्यता के साथ देखे तो इन तीन शब्दों में बहुत ही गूढ़ रहस्य एवं अर्थ छिपा हुआ है। इस जयन्ती को मनाने का क्या उद्देश्य,महत्व, इतिहास है इन सभी संदर्भों से संबंधित मैं आपको संक्षेप में कुछ बाते बताऊँगा।

वीर किसे कहते हैं ? जो आत्मजयी हो, इन्द्रिय, मन विजयी हो वह वीर है। जो युद्ध विजयी होते हैं, शेर के साथ खेलते हैं वीर योद्धा होते हैं वह भी वीर नहीं हैं लेकिन जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं वास्तव में वही वीरातिवीर होते हैं। सिकन्दर को विश्व विजेता कहना गलत है क्योंकि वह दुनिया के सामने हाथ फैलाता हुआ मरा था। अंतिम समय में अपनी माँ के दर्शन भी नहीं कर पाया था। अंतिम साँसों तक वह अपने मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं कर पाया था तो उसे विश्व विजेता कहना कहाँ तक ठीक है ?

यहाँ तक कि चक्रवर्ती भी विश्व विजयी नहीं होता है। जो आत्मजयी नहीं वह विश्वजयी भी नहीं हो सकता क्योंकि मन और इन्द्रियों को नियन्त्रण रखना बड़ा ही दुर्गम कार्य है। रावण, कंस, दुर्योधन, मुसोलिन, हिटलर एक से एक बढ़कर महान् धुरन्धर योद्धा थे लेकिन स्वयं की आत्मशक्ति पर नियन्त्रण नहीं था इसीलिए परास्त हुए। जो स्वयं पर नियन्त्रण रखना जानता है उसके आगे दूसरे झुकते हैं। झुकती है दुनिया झुकाने वाला चाहिए।

शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल अधिक मजबूत होता है। महावीर भगवान् ने सांप का दमन किया, मदोन्मत्त हाथी को वश किया, शकुन्तला का पुत्र भरत शेर के बच्चें के साथ खेलता था। आज भी अनेकों लोग साँप, हाथी, शेर, चीतों को अपने वश में कर लेते हैं लेकिन यह कोई वीरता बहादुरी नहीं है, बहादुरी, वीरता, शौर्यवान तो वह है जिसने काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या आदि दुष्प्रवृत्तियों को जीतकर अपने मन इन्द्रिय को संयमित कर लिया है। शासन अर्थात् स्वयं के ऊपर नियन्त्रण करना, स्वयं का आत्म विश्लेषण, निरीक्षण,परीक्षण,





शोध-बोध खोज करना, अपनी आत्मा का अनुशासन करना यही है शासन। जो आत्मानुशासन करना जानता है वह पर शासन भी कर सकता है। जो दीपक स्वयं प्रकाशित है वह हजारों दीपों को प्रकाशित कर सकता है, जिस लोह तत्व में चुंबक कण है वही तो चुंबक बनेगा। जिसमें चुंबकीय गुण ही नहीं वह लोहा क्या चुंबक बनेगा ? इसीलिए पहले स्व को निहारना होगा, स्व को सुधारना होगा, स्वयं को शासित होना पड़ेगा तब शासन मिलेगा।

वीर का शासन आज ऐसे ही जीवन्त नहीं है उन्होंने 12 वर्ष की कठोर साधना के द्वारा कैवल्यज्ञान प्राप्त किया और उस कैवल्यज्ञान प्राप्त होने के बाद सभी जीवों का हित करने के लिए अपनी दिव्य देशना को 718 भाषाओं के द्वारा प्रतिपादित किया। वे भाषायें व्याकरण, छंद, अलंकार, संस्कृतमय, प्राकृतमय होती हैं। विनोबाभावे को 18 भाषाएं आती थीं। आचार्य महावीरकीर्ति गुरुदेव को 18 भाषायें आती थी तो उन्हें बहुत ही विद्वान, ज्ञानवान् समझा जाता था। अब आप विचार करो तीर्थंकर भगवान् के पास कितना ज्ञान था। महान् वैज्ञानिक आइन्सटीन ने भी यह कहा था कि हम आंशिक सत्य को जान सकते हैं सम्पूर्ण को नहीं। न्यूटन ने भी यही कहा था कि हमने ज्ञान रूपी समुद्र के किनारे से कुछ कंकर पत्थर चुने हैं। हम लोग दो-चार अक्षर पढ़ लेते हैं और स्वयं को बड़ा भारी ज्ञानी, पंडित मानने लगते हैं। वास्तव में यही है हमारी संकीर्णता, तुच्छता, दुर्बलता, कमजोरी, हीनता, पशुता। जो महान् होता है वह तो अपनी अज्ञानता को जानने का हर क्षण प्रतिपल प्रयास करता है। महावीर ने अपनी अज्ञानता को खोजा और उसे दूर करने का प्रयास किया/पुरूषार्थ किया। जो पुरुषार्थ करता है उसका पुरुषार्थ कभी खाली नहीं जाता। महावीर का पुरूषार्थ सफल हुआ उन्हें क्षायिक कैवलज्ञान हुआ था। ऐसा ज्ञान कि सम्पूर्ण शरीर से अनक्षरी भाषा में बोलते थे और 718 भाषाओं के द्वारा 7 पद्धतियों के द्वारा प्रश्नों का उत्तर देते थे। आप आश्चर्य मत करो आज विज्ञान ने भी बहुत उन्नति कर ली है। संसद में भी एक मशीन होती है जिसके द्वारा सभी व्यक्ति अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं फिर भी तीर्थंकर भगवान् का मुकाबला नहीं हो सकता। एक डॉक्टर वैज्ञानिक, इंजीनियर बनने के लिए किताबें पढ़ते-पढ़ते आँखे फोड़ लेते है फिर भी इतना ज्ञान नहीं हो पाता। दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्म चक्र प्रवर्तन होता है। कैसा है वह धर्मचक्र ? जो धर्म अहिंसादि पांच व्रतों से सहित, उत्तम क्षमादि दश धर्मों से युक्त, रत्नत्रय

से वेष्टित तथा जिससे सम्पूर्ण प्रजा सुखी, राजा बलवान और धार्मिक सज्जन, ज्ञानी, गुणी प्रजावत्सल बनें क्योंकि राजा से ही राष्ट्र की रक्षा होती है। राष्ट्र की रक्षा नहीं होगी तब तक धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। जब राष्ट्र परतन्त्र था तब धर्म एवं गुरुओं का अभाव था। इसीलिए जहाँ-जहाँ धर्मचक्र प्रवर्तन होता है वहाँ-वहाँ प्रजा सुखी, राजा धार्मिक, सर्व दिग्-दिशाओं में मेघ जलवृष्टि करते हैं। अतिवृष्टि, अकाल, शारीरिक-मानसिक बीमारियों का नाश होता है। ऐसा वीतराग जिनेन्द्र देव का धर्मचक्र जो प्रत्येक प्राणिमात्र के लिए सुखदायक हो, सदा प्रभावशाली बना रहे। हे प्रभो! आपका जिनशासन सर्वलोक में विस्तृत हो/जयवन्त हो।

राष्ट्रीय चिन्ह अशोक चक्र में 24 आरे होते हैं, 4 शेर, आगे-पीछे बैल, बीच में घोड़ा-शेर,हाथी। इन सभी चिन्हों के पीछे जैन धर्म के प्रतीक जुड़े हुए है। जैसे 24 आरें 24 तीर्थंकर, बैल और शेर आदिनाथ से महावीर भगवान् के चिन्हों का सर्किल ऐसा क्यों ? क्योंकि अशोक राजा के वंशज जैन थे। चन्द्रगुप्त उसके दादा थे जो कि बड़े महान् आचार्य भद्रबाहु के शिष्य थे इसीलिए इस वंश परम्परा के संस्कारों के अनुसार इस अशोक चक्र में जैन धर्म का सार छिपा है। चक्र प्रगति का प्रतीक होता है। एवं सिंहासन, जिस प्रकार शेर, पराक्रमी होता है उसी प्रकार जिसने मन इन्द्रियों को वश करके स्वयं को पराक्रमी बना लिया है वही सिंहासन पर विराजित होता है। इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय चक्र में भी विश्व बन्धुत्व, विश्व मैत्री, सहकारिता, धर्म सहिष्णुता जुड़ी हुई है। लेकिन आज अशोक चक्र में भी शोक ही शोक नजर आ रहा है। सभी जगह पापाचार, भ्रष्टाचार, हिंसा का साम्राज्य छाया है। महावीर के आदर्श सिद्धान्तों को कलंकित अपवित्र कर डाला है। इसीकारण सम्पूर्ण भारतवासी दुःखी, अशान्त, परेशान हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि तुमने महान् पुरुषों के वाक्यों को, आदर्शों को, सिद्धान्तों को अपवित्र – अपावन कलंकित किये हैं इसीलिए अवश्य ही कष्ट मिलेगा। चारों तरफ धन सत्ता, सम्पत्ति के लिए पापाचार-भ्रष्टाचार मचा है। अगर धन-सत्ता-सम्पत्ति में सुख होता तो तीर्थंकर चक्रवर्ती क्यों त्यागते ? क्या उन्हें उनके सुखों का ज्ञान-अनुभव नहीं था ? अरे! भगवान् को तो गर्भ से मति-श्रुत-अवधिज्ञान था लेकिन जो सम्यक् ज्ञानी होते हैं वे तो **''चक्रवर्ती की संपदा इन्द्र सरीखे भोग, काग बीट सम गिनत हैं सम्यक्दृष्टि लोग''** उन्हें धन, सम्पत्ति से राग नहीं होता इसीलिए वीतरागी होते हैं लेकिन हमने धन से राग नहीं छोड़ा इसीलिए वित्तरागी बने हुए





हैं। लेकिन भगवान् ने कहा कि जितने अंशो में धन के प्रति राग छोड़ोगे उतने ही अंशों में सुखी बनोगें। ईसामसीह ने भी कहा था कि एक बार तो सुई के छेद से हाथी निकल सकता है लेकिन परिग्रहधारी ईश्वरीय विशाल द्वार से भी प्रवेश नहीं कर सकता। **जितनी संतति उतनी ही** विपत्ति। अधिक परिग्रहवाले को नरक में अधिक स्थान मिलता है। सबसे ज्यादा परेशान दुःखी धनवाले ही होते हैं उनको नींद भी गोलियाँ खाकर लेनी पड़ती है। सबसे अधिक हार्टफेल पैसेवालों के ही होते हैं।

आवश्यक वस्तुओं के संग्रह से उतना पाप नहीं लगता जितना कि अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह से। एक पाप से अनेकों पापों का जन्म होता है एवं एक पुण्य से अनेक पुण्य उत्पन्न होते हैं। एक दुर्गुण से अनेकों दुर्गुण, एक गुण से अनेकों गुण विकसित होते हैं। महावीर ने भील की पर्याय में केवल कौवे के मांस का त्याग किया था। उसी एक त्याग से ही एक दिन भगवान् बन गये और केवल एक घमण्ड किया मरीचि की पर्याय में तो अनेकों भवों में वृक्ष, तिर्यंच आदि कुयोनियों में दुःख उठाना पड़ा। इसीलिए आज वीरशासन जयन्ती पर्व के अवसर पर हम सभी को एक नियम तो अवश्य ही लेना चाहिए अपनी स्वेच्छा से। तभी वीर शासन जयंती पर्व की सफलता सार्थकता सिद्ध होगी।

वीर के शासन से तत्वों का बोध होता है, मन का निरोध होता है, आत्मा शुद्ध होता है। जीव राग से विरक्त होता है, विश्व मैत्री की भावना करता है ऐसे वीर के शासन से शिक्षा लेकर अपने जीवन में स्याद्वाद, अनेकांत, अहिंसा, सहकारिता, परोपकारिता, आदर्शवादिता, सदाचारिता, दया, क्षमा, करुणा आदि सद्गुणों को आचरित, क्रियान्वित करें।

**''जरा जाव ण पीडेइ, वाही जाव ण वड्ढइ।**
**जाविं दिया ण हावंति, ताव धम्मं समायरे॥''**

**अर्थ–** जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़तीं, जब तक इन्द्रियां हीन-अशक्य नहीं बनतीं; तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिये। उसके बाद तो–

**''अर्द्ध मृतक सम बूढ़ा पनौ, कैसे रूप लखैआपनौ।''**

# 4 विश्व में महानतम प्राणी : मनुष्य

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, ज्ञान-विज्ञान दिवाकर, वैज्ञानिक धर्माचार्य पूज्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने उदयपुर (आघड) की धर्मसभा के भक्तगणों को सम्बोधित करते हुए कहा कि 'अयं विश्वे किं दुर्लभ' इस विश्व में क्या दुर्लभ है ? धन सम्पत्ति, जमीन जायदाद, हीरे जवाहरात, सत्ता, वैभव ? नहीं ये दुर्लभ वस्तुएं नहीं बल्कि ये तो पापी की विभूति बतायी हैं। दुर्लभ तों मनुष्य जन्म बताया है। कैसा मनुष्य जन्म दुर्लभ हैं ? खाने-पीने, मौज मजा करने वाला यह मनुष्य जन्म दुर्लभ है ? नहीं, अगर हमको धन सम्पत्ति, जमीन जायदाद धन, दौलत रूपया पैसा मिल गया तो यह मनुष्य जन्म श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि इस मानव, जाति से कई गुणी सत्ता-विभूति, संपत्ति तो भोगभूमि, स्वर्गों के देवों के पास होती है वहाँ दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं उन कल्पवृक्षों के द्वारा हर प्रकार की मनोवाञ्छायें पूर्ण होती हैं फिर भी भोगभूमिज मनुष्य, देव श्रेष्ठता की श्रेणी में नहीं बल्कि यह कर्मभूमि का मनुष्य ही श्रेष्ठ है क्योंकि इस मानव के पास मनोविज्ञान के अनुसार 10 खरब सेल का ढ़ाई पौंड का मस्तिष्क है यानि विवेक, ज्ञान, प्रज्ञा, चारित्र का मुख्य केन्द्र मानव के पास ही है। व्हेल मछली शरीर में इतनी बड़ी होती है लेकिन इतना बड़ा मस्तिष्क उसका भी नहीं होता। मनुष्य शरीर के द्वारा ब्रह्माण्ड की हर उपलब्धि हासिल कर सकता है। सभी धर्मों के तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर इसी मानव आकृति में पैदा होकर संसार को सही दिशा-दशा का निर्देशन करते हैं। मानव के द्वारा ही धर्म, दर्शन, ज्ञान विज्ञान, नये-नये आविष्कार, परिष्कार होते हैं।

मैं बहुत ही गौरव का अनुभव करता हूँ कि हमें यह दुर्लभ मानव पर्याय मिली, यह पर्याय तो हमें मिल गयी लेकिन इस पर्याय के मिलने पर हमने क्या-क्या उपलब्धियाँ हासिल की, स्वकल्याण के साथ कितना पर कल्याण किया ? उपलब्धियों का सदुपयोग करने से लब्धि बढ़ती है अन्यथा पतन पराभव तो निश्चित है।

लेकिन आज के प्रायोगिक जीवन में मैं यही देखता हूँ कि हमें उपलब्धियाँ तो बहुत मिली लेकिन हमकों अधिक उपलब्धियाँ मिलने के कारण हमने उपलब्धियों का दुरूपयोग कर डाला क्योंकि अधिकता में पतनता छिपी रहती है। निषेध में अधिक आकर्षण होता है। भारत में प्राकृतिक खनिज संसाधन, ज्ञान विज्ञान,





सिद्धान्तों, उपलब्धियों की भरपूर मात्रा में बहुतायत रही है लेकिन वर्तमान समय में भारत सबसे गरीब देश है ऐसा क्यों ? कैसे हुआ ? क्योंकि हमनें बाहरी ढोंग, दिखावा, आपसी मनमुटाव, लड़ाई झगड़े,बेईमानी, छल कपट, मायाचारी आदि निकृष्ट विकृतियों के माध्यम से इन उपलब्धियों से लब्धि के बजाय अनुपलब्धि ही ग्रहण की। हमारी सारी उपलब्धियाँ गुप्त-सुप्त अवस्था में पडी हुई हैं। हमें उनके बारे में ज्ञान अनुभव ही नहीं है। एक भिखारी अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में भीख माँगता रहा,दो चार पैसों के लिए हमेशा दूसरों के सामने झोली फैलाता रहा। एक दिन भीख माँगते माँगते वह इस संसार से अलविदा हो गया तो लोगों ने सोचा वह गंदा भिखारी हमेशा इस जगह बैठकर भीख मांगता था अब मर गया तो हमें उसके बैठने के स्थान को थोड़ा-थोड़ा खोदकर उस जगह की अपवित्रता हटाकर पवित्र बना देना चाहिए। भूमि की खुदाई की तो उस भिखारी के बैठने वाली जगह पर अपार धन संपत्ति मिली। इसी प्रकार की स्थिति हम सभी की बनी हुई हैं। हमारें अंदर अनंत ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य भरा हुआ है लेकिन हमें उन अनंत उपलब्धियों के बारे में ज्ञान ही नहीं है। इसीलिए हम सभी गरीब भिखारी बने हुए हैं। आचार्यश्री ने सभी को अपनी गुप्त-सुप्त अनंत शक्तियों को उजागर करने के लिए कहा कि मैं सभी को कंकर से शंकर, Dog से God हीयमान से वर्द्धमान, दुरात्मा से परमात्मा, विघटन से संगठन के सूत्र में बाँधना चाहता हूँ। संगठन के सूत्रों में बंधकर ही हम अपनी बिखरी, विसंगठित शक्तियों को बाँधकर अनंत शक्तिशाली बन सकते हैं। एक बड़े पहाड के द्वारा एक पहाड़ को नहीं तोड़ सकते लेकिन एक छोटे अणुबम के द्वारा हम बड़े पहाड़ को तोड़ सकते है। ऐसा क्यों ? कैसे ? विज्ञान के अनुसार उस छोटे अणुबम में समस्त शक्तियों को एक जगह केन्द्रित करके रखा है। इसीलिए उस छोटे अणुबम में उस बड़े पहाड़ की अपेक्षा अधिक शक्ति है इसी प्रकार हम कम संख्या में भी हों लेकिन आपसी संगठन में हो तो अनंत शक्तिमान हैं।

आज विश्व के सर्वाधिक विकसित देशों में जापान का नाम सबसे अग्रणी है। वहाँ के नागरिक आपसी प्रेम, वात्सल्य, संगठन, एकता के कारण इतनी उन्नति विकास कर पाये हैं। भारतवासियों की विघटन के कारण दयनीय स्थिति का वर्णन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गीतांजलि में किया है।

"हे मोर अभागा देश जागे रे करे छ अपमान।

अपमाने होते हवे तोमा देर सवार समान॥"

इस विघटन से आज सम्पूर्ण विश्व का वातावरण असन्तुलित हो गया है। यह भारतीय संस्कृति विश्व प्रधान संस्कृति है। हमारी संस्कृति हिमालय से कन्याकुमारी तक ही नहीं अपितु विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई संस्कृति है। आचार-विचारों की संहिता एक है। भारतीय सभ्यता-संस्कृति जातिगत, भाषागत भोगोलिक, धार्मिक, आर्थिक सभी दृष्टि से भिन्न होने के बावजूद भी संविधान संहिता की दृष्टि से एक ही है किंतु आज वर्तमान में भेद, लगाव, वैमनस्य आदि विघटित विकृतियों को देखकर आँखों से आंसू टपकते हैं। मन सिसकियाँ लेता हैं मानो प्रेम वात्सल्य की सरिता सूख गयी है। जातीयता के उन्माद ने, स्वार्थ की लिप्सा ने, अहंकार की महत्वाकांक्षाओं ने आज सभी को बंदी बना लिया है। हम पंथों की अनेकता में बँटते जा रहे हैं। दीपक बोलता नहीं, जलता है इसी प्रकार संगठित, प्रेम, वात्सल्य हृदय वाला व्यक्ति सभी को अपने करुणारस के प्रकाश से प्रकाशित करता है न कि अलगाव फूट, कलह, ईर्ष्या, द्वेष के बीज बोकर विश्व के प्राणियों की मनोभूमि को ऊसर बनाता है। सोचने समझने की बात है यदि हमने एकता, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, संगठन को नहीं अपनाया तथा फूट, ईर्ष्या, घृणा, अलगाव, भेदभाव को प्रोत्साहन दिया तो हमारा उज्ज्वल भविष्य का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा।

यदि हम परिवार का, समाज का, राष्ट्र का, विश्व का उत्थान, उन्नति, विकास चाहते हैं तो पंथवाद, मिथ्या मान्यतायें, रूढ़ि, गलत परम्पराओं के गंदे नाले से ऊपर उठकर एकता के सूत्र में पिरो दे ताकि आपसी प्रेम, वात्सल्य संगठन का नया जन्म हो और अहिंसा, सत्य, अनेकांत की संस्कृति में सुख शांति उन्नति, प्रगति के महकते पुष्प-फल पल्लवित पुष्पित हों।

भारतीय सभ्यता संस्कृति पवित्र पावन गौरवशील सभ्यता संस्कृति है। इसमें राम की मर्यादा, कृष्ण का तत्व उपदेश, बुद्ध की करुणा, कर्ण का दान, जनक की अनासक्ति, भरत-लक्ष्मण का भातृप्रेम, हनुमान की निष्काम सच्ची भक्ति विभीषण का समर्पण, शबरी की अतिथि सेवा, महावीर की परम अहिंसा, महात्मा गाँधी हरिशचंद्र की सत्यनिष्ठा, राणासांगा, लक्ष्मीबाई का देश के प्रति उत्कृष्ट बलिदान समर्पण आदि-आदि महानतम तत्वों, विचारों, आचारों की मान्यतायें, विचारधारायें गूढतम रहस्यों सिद्धान्तों को लिए हुए है। यह भारतीय सभ्यता संस्कृति





रावण के विकारों की तरह गुलाम नहीं, कंस की तरह क्रूर नहीं, नादिरशाह की तरह निर्दयी नहीं, दुर्योधन की तरह अभिमानी नहीं। यह जीवनदान, त्याग, समर्पण बलिदान देने वालों की संस्कृति है। प्रेम वात्सल्य, दया, करुणा, परोपकार का अमृत पिलाने वालों की सभ्यता-संस्कृति है। इस सभ्यता संस्कृति ने महान-महान विचारकों, दार्शनिकों, संत, ऋषि, मनीषी, वैज्ञानिकों को जन्म दिया है जो परम सत्य तथ्य की खोज में, श्रेष्ठतम अहिंसा एवं आदर्श त्याग दान, बलिदान,समर्पण की उत्कृष्ट साधना में डूब गये। उन्होंने तीर-तलवार, अणुबम, एटमबम नहीं दिये बल्कि सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव को भी करुणामय अभयदान, जीवनदान दिया।

पूज्य आचार्य भगवन ने अन्तिम शब्दों में सभी की उन्नति प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कहा कि हमारी आपसी एकता ही परिवार समाज की एकता है, हमारी उन्नति ही समाज की उन्नति है, विश्व की उन्नति है। हम सुंदर-सुंदर कोठी बंगलों में अच्छी सुख सुविधाओं के साथ दूध-घी पी रहे हैं और पड़ोसी पानी को तरसता है तो क्या उसकी हाय हम को नहीं लगेगी? स्वादिष्ट भोजन का मजा तो तभी है जब चार मित्रों के साथ मिलकर खा रहे हों। रोगी के बीच में स्वस्थ व्यक्ति भी रोगी हो जाता है, बलवान की कीमत बलवान के सामने ही है। इसीलिए स्वयं संभलो फिर दूसरों को संभालो- उठो उठाओ, हँसो-हँसाओं, स्वयं जीओ दूसरों को जीने दो। सेवा और भक्ति को अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाओ। समाज को ऊपर उठाने हेतु संगठन चाहिए। आत्मा को निर्मल बनाने हेतु भक्ति चाहिए। इन दोनों का आपसी मिलन कराओं तभी सुख शांति के उद्देश्य की पूर्ति होगी। गाड़ी दो पहियों से चलती है, ताली दो हाथों से बजती है, दिन और रात्रि के योग से ही वार होता है, श्रावक और श्रमण से ही जीवन परम पावन आदर्शवान, विवेकवान, प्रज्ञावान बनता है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कुछ सिद्धान्त होते है, उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ नियम होते हैं, ध्येय पूरा करने के लिए एक मार्ग चुनना होता है। इसीलिए हम सभी का एक मुख्य लक्ष्य/उद्देश्य/ध्येय होना चाहिए और वह लक्ष्य/उद्देश्य/ध्येय है भारतीय सभ्यता संस्कृति की रक्षा करना उसे पुनः आदर्श व पवित्र, पावन, उज्ज्वल बनाना। समाज का, विश्व का मार्ग उन्नतिशील,गतिशील, विकसित बनाना इसके लिए हमें अपनी बिखरी हुई ऊर्जा को एक सूत्र में बाँधना होगा, तोड़ने की नहीं जोड़ने की कला सीखनी होगी, गिराने की नहीं, उठाने की दक्षता प्राप्त करनी होगी।

आग को आग से नहीं पानी से ही बुझाना होगा इसीलिए समस्त विकृतियों का त्याग करके उदारता, प्रेम, आपसी वात्सल्य, संगठन की मनोवृत्ति के द्वारा ही प्रत्येक मानव के कल्याण का पथ प्रशस्त होगा।

# 5 चातुर्मास की उपयोगिता कब और कैसे?

उदयपुर चातुर्मास स्थापना के अवसर पर अपार जनसमूह को सम्बोधित करते हुए सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने कहा कि बहुत सारी भेडों के बीच एक शेर का बच्चा भी अपनी शक्ति को भूलकर भेड़ बन गया। एक दिन उसे उसी की जाति के शेर ने देखा और उसे जागृत करते हुए कहा कि तुम तो जंगल के राजा हो और इन भेड़ों के बीच अपनी शक्ति भूल कर भेड़ बन गये हो उठो जागो देखो स्वयं को तुम जंगल के राजा शेर हो। उस शेर ने एक हुंकार के साथ दहाड़ लगाई तो उस भेड़ो के बीच छिपे शेर के अंदर भी वैसी आवाज निकालने की शक्ति आ गयी। उसने भी ऐसी ही दहाड़ लगायी तो उसकी डरावनी दहाड़ सुनकर झुण्ड की सभी भेड़े भाग गयीं उस शेर को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो गया कि मैं वास्तव में जंगल का शक्तिशाली राजा शेर हूँ। इसी प्रकार ये संत चातुर्मास के दौरान आप सभी को जगाने आये हैं। आप सभी अपनी अनंत शक्तियों, क्षमताओं, उपलब्धियों को भूलकर दीन-हीन-दुःखी, निर्धन, रोगी, कायर बनकर बैठे हो। ये साधु शेर बनकर आये हैं। तुम सभी शेर हो क्योंकि जिसने भारतभूमि में जन्म लिया वह देवों से भी महान् है। क्योंकि स्वर्ग के देवता इस भारत भूमि पर आकर यहाँ के महान् पुरुषों की सेवा भक्ति करते हैं। लेकिन उन्हीं की सेवा भक्ति देवताओं ने की जिन्होने अपनी गुप्त-सुप्त शक्तियों, उपलब्धियों को उजागर किया। इस धरती पर जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी नर रूप में ही जन्म लेता है बाद में पुरुषार्थ, साधना के द्वारा नर से नारायण बनता है। अपने नारायण के रूप को पहिचानो, आत्मविश्लेषण करो, खोजो स्वयं की अनंत उपलब्धियों को। मैं तुम सभी को गाढी निद्रा से जगाने आया हूँ, आत्म विश्लेषण कराने आया हूँ, नर से नारायण बनाने आया हूँ। हीयमान से वर्द्धमान, Dog से God बनाने आया हूँ। उठो, जागो अपने लक्ष्य को प्राप्त करो। अगर तुमने अपना दीनता हीनता अहंता नहीं छोड़ा तो इन साधुओं की





संगति से कुछ लाभ नहीं मिलेगा। मैं दीनता हीनता को कायरता मानता हूँ। मुझे आदर्शवादिता से प्रेम है। आदर्शवादिता से मेरा तात्पर्य पुरानी मिथ्या मान्यतायें, रूढ़ियाँ, अंधश्रद्धा, मिथ्या कल्पनाओं का एकदम विनाश कर दो। Old is Gold इस उक्ति को मैं बिल्कुल नहीं मानता। आज विज्ञान का युग है और विज्ञान का अर्थ होता है विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना, सत्य-तथ्य को ही ग्रहण करना, गलत को पूर्णरूपेण नकार देना यही विज्ञान है। हम सत्य तथ्यों का शोध-बोध खोज करें वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों का सदुपयोग करें यही सत्यता की सच्ची पहिचान है।

भारत की उपलब्धियों के बारे में बताते हुए आचार्य श्री ने अपनी पीड़ा को प्रगट करते हुए कहा कि यह भारत विश्व का गुरु रहा, इस भारतीय वसुन्धरा में पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक संसाधन, खनिज पदार्थ, शक्तियाँ, विभूतियाँ हैं लेकिन आज के राजनेताओं ने, खलनेताओं ने इसको बरबाद कर दिया। परतंत्रता, गुलामी की जंजिरों में जकड़ दिया है। यह देश आज विदेशों के सामने कटोरा लेकर भीख मांग रहा है। हर क्षेत्र में हर दृष्टि से भ्रष्टाचार पापाचार, अत्याचार, शोषण, भूखमरी, अकाल, दुर्भिक्ष की स्थिति दिखाई दे रही है।

जिस देश की लड़कियाँ अपने शीलधर्म की रक्षा अपने प्राणों का उत्सर्ग करके करती थीं। आज उसी देश की लड़कियाँ विश्व सुंदरी बनकर अपना शीलहरण सभी के सामने करवाती हैं। संघमित्रा आदि ने विदेशों में जाकर धर्म की ध्वजा को लहराया था, आज लड़कियाँ विदेशों में जाकर शील को बेचती हैं और ऐसी नट-नटिनी का हमारे प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति तक स्वागत करते हैं। वास्तव में भारतियों की विवेक बुद्धि कहाँ खो गई है? विवेक बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण ही देश पतन के गढ्ढे में जा रहा है।

## इस अधोपतन को कैसे रोका जाये?

इस अधोपतन को करने में एवं रोकने में हम स्वयं जिम्मेदार हैं। मानव हारता है तो स्वयं से। इसीलिए मैं कनकनंदी प्रत्येक मानव के हाथ में ऐसा पराक्रम, शौर्य शक्ति देना चाहता हूँ, जिससे प्रत्येक मानव अपनी खोयी शक्ति को पहिचाने, अपने विवेक को जागृत करे।

आज मानव के गिरते हुए विवेक को देखकर यह धरती भी चिन्तित है उसे मनुष्य पर गर्व था कि सम्पूर्ण प्राणी जगत में सबसे अधिक शांत, धैर्यवान, क्षमावान, विवेकवान, ज्ञानवान सत्य का उपासक अगर कोई है तो वह मानव ही है लेकिन

आज के उस मानव के विवेक को देखकर मुझे बहुत ही पीड़ा व दुःख होता है। आप सभी को मेरी पीड़ा को समझना होगा और मुझे तन-मन अन्तरंग से सभी मेवाड़ के सपूतों को सहायता सहयोग देना होगा। ताकि मैं पुनः इस गारत को भारत बना सकूँ। क्योंकि इस मेवाड़ भूमि के प्रत्येक कण कण में मुझे आज भी वीरता, स्वाभिमानिता के तत्व दिखाई दे रहे हैं। मैं भारत को गारत मानते हुए भी मेवाड़ को स्वर्ग मानता हूँ क्योंकि यहाँ राणा सांगा पन्ना धाय का त्याग बलिदान शान-मान-अभिमान अभी भी जीवित है। यह चातुर्मास एक आदर्श, क्रांतिकारी चातुर्मास बनें ऐसी मेरी सभी से मंगल शुभ पवित्र आशा-जनक भावना है।

# 6 भावों की पवित्रता एवं दूसरों से सद्व्यवहार ही धर्म है

लकड़वास में जैन एवं हिन्दू जनसमूह के बीच श्रद्धालुगणों को सम्बोधित करते हुए वैज्ञानिक धर्माचार्य आचार्यरत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने कहा कि ''सहृदयता, वात्सल्यता, पवित्रता, निर्मलता, करुणा, दया, प्रेम, परोपकारिता ये सभी गुण मनुष्य जीवन के मुख्य लक्षण एवं महानता की पहली निशानी है। मानवीय गुणों में भावों की पवित्रता, निर्मलता का सर्वोपरि महत्वपूर्ण स्थान है। धन, बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता, धार्मिकता आदि बातों से सम्पन्न होते हुए भी जिस व्यक्ति में अंतरंग भावों की शुद्धि, पवित्रता, निर्मलता, करुणा नहीं होती है उसे पिछड़ा, एकांगी और अपूर्ण ही माना जावेगा। समृद्धि,वैभव, बौद्धिक प्रखरता, बाहरी धार्मिकता, दान, पूजा, आदि तो मनुष्य के लिए साधन मात्र जुटा सकते हैं लेकिन ठोस, मजबूत आधार नहीं दे सकते। जैसे कि अक्षरों की वर्णमाला में 'ग'से गधा, 'ग'से गमला, गणेश आदि होते हैं। लेकिन वास्तविक रूप से 'ग' गमला, गणेश, गधा नहीं है, इसी प्रकार वस्तुतः धर्म तो भावों की पवित्रता एवं दूसरों के प्रति करुणा, दया, वात्सल्य, क्षमा, परोपकारिता में निहित है।

धर्म का दूसरा मुख्य लक्षण सत्य के प्रति आस्था, दृढ विश्वास है। जबतक हमें सत्य के प्रति आस्था, विश्वास, रुचि, प्रतीति नहीं होगी तब तक हम मिथ्या अंधकार, रुढ़ियाँ, मिथ्यामान्यताओं में पड़े पड़े स्व पतन के साथ साथ पर का





भी पतन करते रहेंगे। सत्य का एक अंश अहिंसा है। सत्य के अंदर विश्व को समस्त गुण द्रव्य पर्याय हैं। सत्य ही परम तप है। संयम है, ''सच्चं भगवं'' सत्य ही परमेश्वर है। कबीरदास ने भी सत्य के लिए कहा है-

**साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।**
**जाके हृदय साँच है ताके हियदे आप॥**

अर्थात् सत्य के बराबर इस दुनियाँ में कोई तप नहीं है और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है जिसके अंतरंग (हृदय) में सत्य है उसके हृदय में भगवान् भी विराजमान रहते हैं। लेकिन आज हम सत्य का प्रायोगिक रूप में आचरण नहीं करते हैं केवल रूढ़िवादी, पुरानी मिथ्या मान्यताओं को लेकर अपने को धार्मिक, सत्यवादी होने का दंभ भरते हैं। तीर्थयात्रा, जप-तप, पूजा-उपवासादि के द्वारा स्वयं को धार्मिक सिद्ध करते हैं। लेकिन क्या ऐसे हम सच्चे धार्मिक, परमात्मा, महात्मा हो सकते हैं?

जब तक हमारा मन, इन्द्रिय संयम से संयमित नहीं होगा तब तक बाह्य क्रियाकांडो के द्वारा कितना भी जप-तप पूजा-पाठ-व्रत-उपवास आदि कार्य कर ले लों उत्थान होने वाला नहीं है। क्योंकि संयम ही जीवन है। रेलगाडी हजारों टन माल लेकर हजारों की.मी. दौड़ती है लेकिन संयम में होने के कारण दुर्घटना नहीं होती और जहाँ संयम से जरा भी चूक हुई कि तुरंत दुर्घटना हो जाती है। इस प्रकार थोड़े से असंयम के कारण एक बड़ी दुर्घटना घट जाती है। जब हमारें जीवन में हर पल हर क्षण असंयम है, उस जीवन का क्या होगा?

हमारे मन में, हृदय में दया का संचार तो है ही नहीं। जबकि दया को धर्म का मूल कहा है। तुलसीदास ने कहा है -

**''दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।**
**तुलसी दया ने छोड़िये, जब तक घट में प्राण॥''**

संसार में जितने भी महापुरुष, महामानव हुए उनके साथ भले ही कोई विशेषता जुड़ी हो या नहीं लेकिन उनका हृदय दया, करुणा, प्रेम,वात्सल्य से लवालव भरा रहता था। दूसरें के दुःख-दर्द, पीड़ा कराह को देखकर उनकी करुणा फूट पड़ती थी, आत्मीयता उमड़ पड़ती थी। इस कारण वें महामानव, महापुरुषों की कोटि में गिने जाते थे। आचार्य श्री ने अपने विद्यार्थी जीवन में जो पढ़ा था उसका एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया कि एक मंदिर में सोने की प्लेट पड़ी हुई

थी और उसके ऊपर लिखा था कि- यह स्वर्गीय उपहार उसके लिए है जो हर जीव से प्रेम करता हो, दया, क्षमा, वात्सल्य, करुणा गुणों से सहित हो।

उस प्लेट को अनेकों तीर्थयात्रा, जप-तप, व्रत उपवास करने वालें व्यक्तियों ने स्पर्श किया। लेकिन वह प्लेट स्पर्श करते ही लोहे की बन जाती थी। एक दिन गाँव का सीधा, सरल, साधारण व्यक्ति भी मंदिर में पहुँचा तो वहाँ के पुरोहित ने उसे भी प्लेट को स्पर्श करने के लिए कहा लेकिन अन्य सभी बड़े-बड़े लोग जिन्होंने व्रत-उपवास-तीर्थयात्रा-दान आदि किये थे, उन्होंने उस प्लेट को उससे स्पर्श करने के लिए मना किया लेकिन बाद में उस गरीब, सरल साधारण कृषक से करवाया तो तुरंत ही वह सोने की प्लेट सोने से भी अधिक चमकने लगी। अर्थात् उस गरीब, सरल हृदयवालें व्यक्ति के मन में भावों में पवित्रता, सरलता, निर्मलता, निर्लोभता, दया, प्रेम, करुणा थी लेकिन उन बड़े-बड़े धर्मात्मा व्यक्तियों के हृदय में ये गुण नहीं थे इस कारण वह प्लेट लोहे की बन जाती थी जबकि सरल पवित्र हृदयवाले का स्पर्श पाते ही सोने से भी अधिक चमकने लगी।

शुद्ध, सरल, पवित्र मन वालों को आक्षरिक ज्ञान भले ही कम हो लेकिन भावों की निर्मलता, पवित्रता, शुद्धता के कारण उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य कुंद कुंद देव ने कहा है-

**''तुसमांस घोसन्तो भाव विशुद्धिये महाणुभाव।**
**नामेण सिवभूदि केवलणाणं आवहदिं॥''**

**अष्ट पाहुड**

शिवभूति नामक मुनिराज को णमोकार मंत्र भी याद नहीं रहता था। उनके गुरुदेव ने 'मा तुस, मा रुस' कहना सिखाया अर्थात् किसी से राग मत करो, किसी द्वेष मत करो। लेकिन इतना सूत्र भी भूल जाते थे। फिर वापिस 'तुस मास भिन्न' सिखाया भूल गये। एक दिन विहार करते समय एक महिला को उड़द की छिलके वाली दाल को धोते हुए देखा तो उससे पूछा तुम यह क्या कर रही हो तो महिला ने कहा- 'तुष मास भिन्न कर रही हूँ' अर्थात् तुष = छिलका, और मास को प्राकृत भाषा में उड़द की दाल कहते हैं। मैं दाल और छिलके को अलग कर रही हूँ। बस इतना सुनते ही मुनिश्री को अपने गुरु द्वारा दिया मंत्र याद आ गया कि गुरुदेव ने यही मंत्र सिखाया था कि 'ना किसी से राग करो, ना किसी से द्वेष' यह आत्मा अलग है, शरीर अलग है। संसार में अपना कोई नहीं बस, अपने परिणामों





की समता ही सब कुछ है इतना चिंतन करते करते शिवभूति मुनिश्री को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। लेकिन आज हम बड़े-बड़े मोटे-मोटे समयसार, नियमसार आदि ग्रंथ पढ़ लेते हैं। तमाम धार्मिक चर्चायें करते-करते जीवन निकाल देते हैं लेकिन जीवन में रंचमात्र भी सुखशांति का एहसास नहीं होता। आखिर ऐसा क्यों ? क्योंकि हमकों सच्ची आस्था, दृढ़ श्रद्धान नहीं है। एक चोर जैसे महान् नीच कार्य करने वाले व्यक्ति को दृढ़ आस्था, श्रद्धा के बल पर गलत मंत्र उच्चारण करने के बावजूद भी आकाश-गामिनी विद्या की प्राप्ति हो गयी। रत्नाकर नामक खूँख्वाँर डाकू ने मरा, मरा जपा तो जपते-जपते राम-राम के प्रति दृढ़ श्रद्धा, आस्था हो जाने पर एक महान ग्रंथ रामायण की रचना करके वाल्मीकि नाम से जग में प्रसिद्धि पायी। यह सब क्या है ? केवल अपने भावों में निर्मलता, पवित्रता, शुद्धता दृढ़ आस्था, श्रद्धा का परिणाम फल।

सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं ? संसार पार उतरने का यह प्रथम सूत्र है और इस सूत्र की परिभाषा को हमनें करोडों अनंतबार समझ लिया लेकिन आत्म प्रतीति आत्म श्रद्धान नहीं जगा, जिस दिन यह आत्म प्रतीति, आत्म साक्षात्कार हो जायेगा उसी दिन कल्याण हो जायेगा। हम बड़ी-बड़ी तत्व चर्चायें समझते हैं लेकिन छोटी-छोटी बातों को आचरण में नहीं लाते। बाह्य जगत की बड़ी-बड़ी वस्तुओं का ज्ञान कर लेते हैं लेकिन स्वयं के अंदर छिपी अनंत शक्तियों का ज्ञान नहीं करते। बड़े-बड़े राजनेता, खलनेताओं के बारे में हमें जानकारी रहती है लेकिन हमारा गरीब पड़ोसी या भाई कब मर गया इसका पता हमें नहीं रहता है। आखिर ये सब क्यों होता है ? इसका कारण एक ही है क्योंकि हमें बाह्य ढोंग दिखावा, सफेद पोश बनना पसंद हैं। मैंने अनुभव किया है कि जितने धार्मिक, धर्मात्मा, पंडित, शिक्षित अपने को बड़े दिखाने का प्रदर्शन करते है वही सबसे अधिक खराब, बेईमान, धूर्त, छल कपटी, बगुला सम होते हैं और जो अपने को हेय, छोटा, कम पढ़ा लिखा अधर्मात्मा मानते हैं उन लोगों के भावों में अधिक मृदुता, सरलता, सहजता, निर्मलता रहती है। वास्तव में आज धर्म को, समाज को, राजनीति को, नास्तिकों से, सामाजिक शोषणकर्ताओं से, राजनैतिक विपक्षियों से जितना खतरा नहीं है जितना कि धार्मिक आस्तिकों से, समाज सुधारकों से एवं राजनैतिक नेताओं से है।

आज हम धर्म को प्रायोगिक रूप में ना तो जानते हैं ना ही मानते हैं बस पुरानी

सड़ी-गली मिथ्या मान्यतायें रूढ़िया ही पालते रहते हैं। आधुनिक उल्टी सीधी शिक्षा प्राप्त करके साक्षर बन जाते हैं। लेकिन ऐसी शिक्षा के साक्षर को मैं राक्षस मानता हूँ। वास्तविक शिक्षा तो वह है जो मानवीय करूणा, परोपकारिता, वात्सल्यता, निर्लोभता आदि गुणों से युक्त हो।

**"पोथी पढ़ पढ जग मुआँ पंडित भया न कोय।**
**ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।"**

अनेकों पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त कर लेना लेकिन हृदय में विवेक, दया, क्षमा, करूणा, शुचिता, पवित्रता नहीं तो सम्पूर्ण ज्ञान बोझ के समान है। हम विश्व का इतिहास उठाकर देखते है तो ज्ञात होता है कि जर, जोरू, जमीन के कारण यह धरा इतनी रक्त रंजित नहीं हुयी, जितनी कि धर्म के नाम पर हुई है। मीराबाई, ईसामसीह,गौतम बुद्ध, सुकरात आदि को उनके ही धर्मावलम्बियों ने पीड़ा दी। हमारे शरीर का रोग ही हमें अधिक दुःख देता है। ईसामसीह ने पालस्टिाइन (पालीताणा) में 21 दिन का उपवास करके इस भारतीय सभ्यता संस्कृति को पढ़ा, देखा और बाद में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार किया। आज हम धर्म को लेकर, धार्मिक क्रियाकांड, मंदिर, मस्जिद, मठ, धार्मिक साहित्य,रीति रिवाज आदि को लेकर खूब लड़ाई-झगड़े करते हैं। होटल में जाकर एक साथ अण्डा मांस आदि खायेंगे, व्यापार में भी मिलावट, धोखाधड़ी करेंगे, नैतिक आचरणों का पालन बिल्कुल नहीं करेंगे लेकिन धार्मिक स्थानों में, मंदिर साधु संतों के पास आकर अवश्य झगड़ा-कलह, वैमनस्यता के बीज बोयेंगे। इस भारत का भ्रष्टता में 8वाँ स्थान व बच्चा पैदा करने में दूसरा स्थान है माने संयम चारित्र का बिल्कुल पतन हो चुका है।

हम में और पशु में कोई अंतर नहीं। आहार, भय, मैथुन परिग्रह ये चार संज्ञायें पशु में भी होती हैं, हमारे में भी है। लेकिन मैं तो मनुष्य को पशु से भी नीच मानता हूँ। मनुष्य को पशु की संज्ञा देना भी पशु के लिए लाञ्छन है, अपमान है, क्योंकि पशुओं से वृक्षों से हमें खाना पीना, लकड़ी, वस्त्र आदि वस्तुए यहाँ तक प्राणवायु, दवाईयाँ तक मिलती हैं। अगर ये सभी वस्तुयें मानव को ना मिले तो मानव एक क्षण, एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। कितना बड़ा उपकार है मानव जाति के साथ पशुओं का लेकिन यह निर्दयी निकृष्ट मानव इतने बड़े-बड़े उपकारों को भूलकर पशुओं को उल्टा मार रहा है,वृक्षों को काट रहा है।





ऐसी निकृष्ट स्वार्थपरता से युक्त मानव जाति का मैं विरोध करता हूँ। वास्तव में ऐसे मानव इस धरा पर भार से भी अधिक हैं। जिनका अंतःकरण पीड़ा और पतन को देखकर पिघलता नही यह समझना चाहिए कि वह सही अर्थो में मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है। रावण के पास धन, वैभव, बुद्धि, सत्ता सब कुछ था। जबकि राम को 14 वर्ष का वनवास था फिर भी आज सभी राम का नाम लेना पसंद करते हैं। रावण का नहीं क्यों ? क्योंकि राम के पास चारित्र, मानवीय करूणा, सज्जनता, मर्यादा थी रावण के पास इन गुणों का अभाव था इसीलिए सदियाँ बीत जाने के उपरांत भी राम का नाम सभी श्रद्धा आदर के साथ लेते हैं रावण का नहीं। पहले एक ही लंका थी एक ही रावण था और उस एक रावण के कारण ही सम्पूर्ण सोने की लंका का विनाश हो गया। आज तो घर-घर में, मन-मन में प्रत्येक व्यक्ति में रावण का वास है। स्थिति विचारणीय है। आखिर क्या होगा ?

आचार्यश्री ने अंतिम शब्दों में सभी को जागृति की प्रेरणा देते हुए कहा कि हम सभी को इतनी विकृतियों को देखते हुए जगना चाहिए एवं इन विकृतियों का विनाश करने के लिए एक संगठित क्रांति करनी चाहिए क्योंकि पाप को सहन करना भी एक पाप है और यह क्रांति संगठन आपसी गोवत्स सम वात्सल्य, करूणा, भावों की पवित्रता के द्वारा ही हो सकती है। सर्वप्रथम हमें बाह्य ढोंग दिखावें की अपेक्षा अपने भावों का परिष्कार करना चाहिए। जो बाह्य जगत देखेगा वह अंतरंग नहीं देख सकता और जबतक अंतरंग नहीं दिखेगा तब तक बाह्य जगत में शांति हो नहीं सकती। जैसे कि हमारी आँख छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-बड़ी सभी वस्तुओं को देख लेती है लेकिन आँख के अंदर जो काली सफेद पुतली एवं बालों की जो विरोनी है उसे तक नहीं देख पाती। इसी प्रकार जो खोटा छोटा व्यक्ति होता है वह अपने को नहीं देखता बल्कि बाह्य जगत् को देखता हैं। सम्पूर्ण धर्म का, शांति का सार यही है कि स्वयं का परिशोधन करो, स्वयं को खोजों, आत्मविश्लेषण करो, जितना हम स्वयं को जान लेंगे उतने ही सुखी बनेंगे। सम्पूर्ण जीवन को उपयोगी बनाते हुए अपने उद्देश्य, लक्ष्य के प्रति दृढ आस्था रखते हुए सभी प्राणी इन सूत्रों को नित्य प्रति अपने आचरण में लाये

**असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृतयोर्मा अमृतं गमयं॥**

असत् से सत्य की ओर प्रयाण करना, अज्ञानरूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश

की ओर गमन करना, मृत्यु तथा विनाश शीलता से अविनश्वर मोक्ष रूपी अमृत को प्राप्त करना। ऐसी मेरी संसार के सूक्ष्म जीव से लेकर बादर सभी जीवों के प्रति मंगलमयी पवित्र, निर्मल भावना है।

# 7 गर्भपात एक - पाप-चार

(उदयपुर) केशलोंच समारोह के अवसर पर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी वैज्ञानिक धर्माचार्य पूज्य कनकनंदीजी गुरुदेव ने गुरु की महत्ता को बताते हुए बताया कि ग्रीक में बड़े-बड़े वैज्ञानिक दार्शनिक, आध्यात्मिक संत-महापुरुष हुए हैं उन्हीं महापुरुषों में अरस्तु हुए जो कि सिकन्दर के गुरु थे। एक बार गुरु-शिष्य घूमने गये तो नदी के उस पार जाकर रास्ता तय करना था। दोनों गुरु-शिष्य पहले कौन पार करे इसके लिए जिद करने लगे कि पहले मैं करूँ कि पहले मैं करूँ। अंत में गुरु ने कहा सिकन्दर अभी तक तुम मेरे आज्ञाकारी शिष्य रहे लेकिन आज मेरी बात की अवहेलना कैसे करने लगे। तब सिकन्दर कहने लगा। गुरुदेव! नदी में कंकर-पत्थर-घड़ियाल आदि विषैले जीव-जन्तु हैं अगर आपका किसी प्रकार प्राण हरण हो जायेगा तो क्या होगा। तब गुरूजी कहने लगे अगर तेरा कुछ हो गया तो राज्य की प्रजा की रक्षा कैसे होगी ? तब सिकन्दर ने कहा- अगर आप जैसे गुरु मौजूद रहेंगे तो मुझ जैसे अनेकों सिकन्दर तैयार हो सकते हैं लेकिन मेरे जैसे अनेकों सिकन्दरों से आप जैसे एक भी महान् गुरु तैयार नहीं हो सकते हैं। इसीलिए गुरु की सुरक्षा करना शिष्य का प्रथम कर्तव्य है। अगर गुरु नहीं होगें तो हमें सही दिशा का बोध कौन करायेगा। विज्ञान के अनुसार पहले इस जगत् में पशु के आकार में मानव रहता था। उसे मानव सभ्यता-संस्कृति-खान-पान के बारे में कुछ ज्ञान नहीं था। धार्मिक दृष्टि के अनुसार भी यह जीव पहले निगोद राशि में था फिर वहाँ से त्रस पर्याय में आया लेकिन जब इस जीव को गुरु की देशना मिली, गुरु का सहारा मिला तब उसका पशु जगत् से उठकर मानवरूप में विकास हुआ। आज भी पशु वहीं का वहीं है। लेकिन मानव ने एक सुई से लेकर टी.वी. कम्प्यूटर, कैलक्यूलेटर आदि यंत्रों का विकास करके उन्नति/प्रगति में चार चाँद लगा दिये हैं। ऐसा कैसे और क्यों ? क्योंकि पशु का कोई गुरु नहीं





होता जो उसके विवेक को जागृत करे। लेकिन मानव का गुरु होता है। इसीलिए इतना उन्नति विकास का मार्ग प्रशस्त कर लेता है। गुरु अपनी साधना, तपस्या, चारित्र, ज्ञान के द्वारा शिष्यों को उसीरूप बनाते हैं। "गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभि सन्निभा" संसार में जितनी महत्ता है, वह सब गुरु की है। जब मानव अपने विवेक को खो देता है, सत्-असत् के मार्ग को नहीं समझ पाता, अपने लक्ष्य को भूल जाता है तब उसे गुरु ही मार्ग बताते हैं। बिना गुरु के इस प्राणी का विवेक जग नहीं सकता और बिना विवेक के प्राणी पशु समान ही है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता संस्कृति में गुरु का महत्व सर्वोपरि रहा है। इसीलिए इस भारत को विश्वगुरु की संज्ञा प्राप्त है। यहाँ परम संतों के आश्रम में रहकर विदेशी भी शिष्यत्व को ग्रहण करते थे। विदेशों की चमक-दमक छोड़कर साधारण साधक की तरह साधना में रत रहते थे। लेकिन आज मुझे बहुत ही दुःख होता है कि भारतीय लोग अपनी भारतीय संस्कृति व धर्मनीतियों की अवहेलना करके पाश्चात्य संस्कृति में आस्था-श्रद्धा रखते हैं। हालाँकि पाश्चात्य देशों में भौतिक सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है लेकिन इन सबके बावजूद भी किसी ढोस मानसिक आधार के अभाव में तथा उद्देश्यहीन एवं सही दिशा निर्देश के बिना सुख दुर्लभ ही है। ऐसी परिस्थितियों के लिए गुरु का सद्भाव होना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि गुरु प्रायोगिक धर्म होते हैं। उन गुरूओं का स्वरूप कैसा होता है ? सिंह के समान शक्तिशाली-बलशाली, निर्भयी, गज के समान गुणों में, ज्ञान में, चारित्र में, क्षमा, दया, करूणा आदि गुणों में भारी, वृषभ के समान भद्र, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, मृग के समान भोले, कोमल शाकाहारी, जागरूक, आकाश के समान विशाल अपने परायें के भेदभाव से रहित सम्पूर्ण विश्व को कुटुम्ब के समान मानने वाले, सूर्य के समान प्रकाशवान् दैदीप्यमान, सागर के समान गंभीर, क्षमावान, नारियल के समान अन्तरंग में कोमल एवं बाह्य में कठोर। जब धर्म के ऊपर संकट आता है तब विरोधियों का सामना कठोरता के साथ करते है, शिष्यों को सुधारने के लिए कठोर अनुशासन वरतते हैं। वैसे 'मौनात् इति मुनि' मुनियों की वृत्ति मौनरूप होती है लेकिन धर्म के विप्लव के समय शास्त्रार्थ करके मौन तोड़कर धर्म की रक्षा करते हैं। जैसे कि अकलंक स्वामी, समन्तभद्र, मानतुंग आदि-आदि महान् गुरूओं ने धर्म की रक्षा दृढ़-कठोर होकर की। वे भोंदू, कायर नहीं होते कि धर्म पर संकट है और शांतभाव मौन लेकर, क्षमा, दया, करूणा का भाव लेकर बैठ जाये।

हमारे भारत को विनाश, पतन, परतन्त्रता का मुँह इसीलिए देखना पडा कि यहाँ के धार्मिक पंडित, पुरोहित, ज्योतिष ऐसी भ्रान्तियों को लेकर बैठे रहे कि शत्रु का भी स्वागत होना चाहिए, किसी दूसरें को हमारे द्वारा कष्ट पीड़ा नहीं होनी चाहिए, जैसा भाग्य में होगा वैसा ही होकर रहेगा। इन सभी बातों को मैं एकदम नहीं मानता। इन बाह्य ढोंग दिखावे से ही धर्म का विच्छेद अधिक होता है। जो अपने को धार्मिक होने का दम्भ भरता है वही सबसे अधिक पापी है। इन धार्मिक अंधश्रद्धालुओं के कारण ही भारत परतंत्र हुआ आज हमें फिर से आजादी के लिए धर्मयुद्ध करना पड़ेगा। हमें मनुष्य को उसकी मनुष्यता सिखानी होगी क्योंकि आज घर-घर में कत्लखानें बूचड़खाने खुले हुए हैं। गर्भ हत्यायें, दहेज हत्यायें हो रही हैं। गर्भपात साक्षात् पंचेन्द्रिय जीव की हत्या है चाहे वह जीव एकदिन का हो या 10 दिन या तीन महीने या नौ महीने का निश्चित ही एक जीव की हत्या का पाप है। संसार में कोई भी जीव आता है तो पहले उसकी आत्मा आती है बाद में उसका शरीर बनना शुरु होता है। लेकिन कितने दुःख व दुर्भाग्य की बात है कि जन्म लेने से पूर्व ही उसे बड़ी ही क्रूर, अमानवीय हिंसक तरीके से हत्या कर दी जाती है। गर्भपात कराने पर चार पाप तो लगते ही है। पहला पाप एक अतिथि की हत्या की क्योंकि गर्भ में आनेवाला जीव अतिथि है, पति-पत्नी के आमन्त्रण पर वह आया है। घर आये अतिथि की हत्या इस देश में महापाप समझा जाता है क्योंकि भारत की सभ्यता संस्कृति में 'अतिथि देवो भवः' अतिथिको देवता कहा है।

दूसरा महापाप वह शरणागत है। शरण में आया जीव तो दया का पात्र होता है। इस देश के संत पुरूषों ने शरण में आये एक पक्षी तक के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। शरण में आया हुआ दुश्मन भी अभयदान का पात्र होता है फिर गर्भ में आया हुआ जीव तुम्हारा दुश्मन तो नहीं है? तुम शरण में आये जीव की इतनी क्रूरता, महापाप और क्या हो सकता है? तीसरा महाभयानक पाप वह दीन-हीन है। एक दीन-हीन, असहाय के साथ ऐसा निकृष्ट, घिनौना कार्य करना क्या पाप नहीं होगा। चौथा पाप यह है कि वह तुम्हारी बेटी है, बेटा है तुम्हारा खून है। अपने खून की हत्या करने वाला दुनिया का सबसे बड़ा खूनी है। ये पाप, ये अपराध दुनिया के बड़े से बड़े पाप है, अपराध हैं। गर्भपात एक पाप-चार है।





आज हमारे आगम की बातें किस पिटारे में बंद हो गयी हैं। पुराणों में उल्लेख है कि जो कोई आत्महत्या करता है उसके परिवार जनों को 6 महीने का पातक लगता है। 6 महीनें तक वे लोग धार्मिक क्रियायें नहीं कर सकते। अगर आत्महत्या करने पर6 महीने का पातक लगता है तो जो गर्भपात करते है, करवाते हैं, अनुमोदना करते हैं उनको कितना पातक लगता होगा। ऐसे लोग कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, पूजा पाठ, जप तप, मुनियों को आहार दानादि, इंद्र, इंद्राणी आदि कार्य नहीं कर सकते क्योंकि वे एक कसाई हैं, हत्यारें हैं।

इस धरा पर नारी की यश गाथा ऋषि मुनियों ने गायी है। उस यश गाथा में माँ की ममता, वात्सल्यता, समर्पण की अभूतपूर्व बेमिसाल छाप लगायी है क्योंकि तीर्थंकर जैसी पवित्र आत्माओं को जन्म देनेवाली माँ ही होती है। माँ का हृदय इतना मुलायम होता है कि वह स्वयं मरकर भी संतान को जिन्दा रखती है, स्वयं भूखी रहकर भी अपने बच्चें को अपने आंचल का दूध पिलाती है अपने बच्चें की रक्षा के लिए रात दिन एक कर देती है। माँ के आंचल में दुनियाँ की समस्त खुशियाँ छिपी होती हैं। जब बच्चा जन्म लेता है वैसे ही उसके मुख से माँ शब्द निकलता है न कि पिता। उस माँ के हृदय में प्रेम करूणा, ममता छिपी हुई है। जिसके कारण यह सब होता है। लेकिन आज मुझे आश्चर्य व सन्देह होता है कि मक्खन व गुलाब से भी कोमल मातृ हृदय ग्रेनाइट व बज्र से भी अधिक कठोर हो गया है इसीलिए तो वह उस मासूम, कोमल बच्चें की निर्मम, नृशंस हत्या करवा लेती है।

दुनिया में सब कुछ नकली हो सकता है लेकिन माँ नकली नहीं हो सकती; यह सूक्ति एकदम गलत साबित हो रही है। आज की माँ उस नागिन से भी बढ़कर हो रही है जो नागिन अपने बच्चें को जन्म लेने का बाद खाती है लेकिन आज की कलियुगी नारी तो जन्म देने से पूर्व ही खा रही है। गर्भपात ने नारी जगत की महिमा गरिमा पर एक बहुत बडा कलंक का धब्बा लगा दिया है। नारी की पवित्रता, विश्वसनीयता पर एक बहुत बडा प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है। हमारी सामाजिक व मानवीय प्रगति पर कुठाराघात हो रहा है। नारी के मुख्य रूप से तीन रूप हैं लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा। वह अपने परिवार को सुसम्पन्न करने के लिए लक्ष्मी बने। संतान को सुशिक्षित, सुसम्पन्न करने के लिए सरस्वती बने। सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए दुर्गा बनें तभी परिवार, समाज, राष्ट्र का हित

हो सकता है। आज की नारी अपनी इन रूपों को भूल गयी है। आज वह अपनी ही जाति की दुश्मन बन गयी है। नारी शोषण, उत्पीड़न आदि के लिए बहुत हद तक नारी ही जिम्मेदार है। हर माँ बेटे को चाहती है, बेटी से नफरत करती है। एक सास बहू को दहेज न लाने के कारण जीवित जला देती है। यह सब नारी के द्वारा नारी के प्रति हो रहा है। इसीलिए नारी जगत् का ह्रास एवं अवनति हो रही है।

आज के केशलोंचको देखकर हम सभी को यह शपथ लेनी होगी कि छोटे-छोटे जीवों की रक्षा के लिए, अपने स्वाभिमान, त्याग, दीनता, अहिंसा आदि गुणों को बनाये रखने के लिए तुम्हारे गुरु केश लोंच करते है कि एक जीव की हत्या भी न हो जाये और दीनता पूर्वक हमें किसी से एक पैसे की याचना ना करनी पड़े। इस स्वाभिमान को रखते हुए हमारे गुरु स्वयं के हाथों से ही अपना केश लोंच करते हैं तो हम भी अपने गुरूओं से यह शिक्षा एवं शपथ लें कि हम गर्भपात नहीं करेंगे एवं दहेज नहीं लेंगे। क्योंकि इन दोनों नियमों के अंतर्गत अहिंसा एवं याचना प्रवृत्ति समाविष्ट है। जब हम इन नियमों में बद्ध हो जायेंगे तो ना तो गर्भपात करेंगे, ना ही दहेज माँगेगे और ना ही दहेज न आने पर किसी बहू की हत्या करेंगे।

मुझे ठोस धर्म चाहिए; यह बाहरी, ढोंग दिखावा नहीं चाहिए क्योंकि अधिकांश जैनी बाह्य, ढोंग दिखावा अधिक करते हैं। 'पानी पियेंगे छानकर जीव मारेंगे जानकर' मंदिर में जाकर सभी को दिखानेके लिए खूब सुंदर अष्ट द्रव्य की थाली सजाकर 4-5 घंटे पूजन करेंगे। घंटे तोड़ेगें लेकिन घर में आकर बहू को प्रताड़ित करेंगे, दहेज लाने को विवश करेंगे। अगर बहू के परिवारजनों की स्थिति दहेज देने लायक नहीं होगी तो जीवित ही बहू को मार देंगे, व्यापार में घोटाला, मिलावट करेंगे इन्कम टैक्स, खेल टैक्स आदि की चोरी करेंगे यह सब क्या है? मैं यह सब कुछ नहीं चाहता। मैं अन्याय, अत्याचार रूपी मान्यताओं को आपसे छुड़वाना चाहता हूँ और सरल, सहज, सादगीपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाना चाहता हूँ; ताकि वास्तविक सच्चे सुख का आनंद प्राप्त हो सके।

पहले के लोग भौतिक सुख साधन, सत्ता, सम्पत्ति, विभूति होने पर भी उनमें सुख नहीं मानते थे। अपने सहज-सरल जीवन में सुख आनंद का अनुभव करते थे। इसीलिए तो अपार सत्ता सम्पत्ति होते हुए भी महावीर, गौतम बुद्ध, रामचंद्र, पाण्डव आदि महान् पुरुषों ने जंगलों का एकान्तवास चुना और उस एकान्तवास,





निर्जर बीहड़ प्रदेशों में सारतत्व, आत्मदर्शन, स्वात्मोपलब्धि अनंत सुख, अनंतज्ञान का अनुभव किया। आत्मा की उपलब्धि के आगे विज्ञान की उपलब्धि शव की उपलब्धि के समान है। आत्मा के सुख, वैभव के सामने सभी सुख, साधन, वैभव तुच्छ हैं, छोटे हैं, खोटे हैं। तिलोय पण्णति ग्रंथके अनुसार- सौधर्म इन्द्र का सुख, सर्वार्थ सिद्धि के देवों का सुख, चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े राजाओं का सुख इन सभी का सम्पूर्ण सुख एक पलड़े में रखो एवं दूसरें पलड़े में अरहन्त, सिद्धों का आंशिक सुख रखो। फिर भी अरहन्त, सिद्धों के आंशिक सुख का ही पलड़ा भारी रहेगा यानि संसार के सम्पूर्ण भौतिक सुख एवं आत्मा का आंशिक सुख फिर भी आत्म सुख ही अधिक सुख है। इसीलिए इस आत्म सुख की प्राप्ति के लिए विदेशी लोग भी भारतीय - सभ्यता संस्कृति में जीना चाहते हैं।

आप सभी मेवाड़ वासियों से मुझे यही आशा-विश्वास है कि भारतीय सभ्यता संस्कृति में जन्में जन्मजात बालकवत् इन दिगम्बर गुरूओं के महत्व-उद्देश्य को जाने, माने, पहिचाने एवं संकल्पबद्ध होकर सरल सहज, निर्मल, पवित्र भावों से युक्त होकर बाह्य, ढोंग दिखावे की अंधी, रूढ़िगत परम्पराओं को तोड़कर ठोस कदमों के साथ स्व एवं पर कल्याण की कामना, भावनाओं से सहित होकर मन, वचन, काय की साक्षीपूर्वक गुरूओं के बताये मार्ग का अनुसरण करें एवं दूसरों से करवायें।

# 8 महान् भारत के सपूतो पुनः जगो

**नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूत कलिलात्मनेः।**
**सा लोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते॥**

अन्तर्राष्ट्रीय गायत्री परिवार के पूर्णाहुति कार्यक्रम के अवसर पर सर्व ऋतु विलास के महावीर भवन में आयोजित अपार जनसमूह को अमृतमयी वाणी का रसास्वादन कराते हुए सिद्धान्त चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी संत, वैज्ञानिक धर्माचार्य आचार्य रत्नश्री कनकनंदीजी गुरूदेव ने कहा कि "महान् भारत के सपूतो! मैं आज बहुत ही गौरव का अनुभव कर रहा हूँ कि भारत विश्व गुरू रहा उसका आज प्रायोगिक सम्मेलन संगठन-शक्ति के रूप में हो रहा है। जब संस्कृति-शक्ति मिल जाती हैं तब विकास, उत्थान, शांति, उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है एवं

जब संस्कृति-शक्ति परस्पर टकराकर विघटित, विकेन्द्रित खण्डित होकर तार-तार हो जाती हैं तब अवनति, पतन, अशांति, अत्याचार, अनाचार, पापाचार, भ्रष्टाचार, लड़ाई, झगड़े, फूट वैमनस्य पैदा होते हैं। इस भारत भूमि को स्वर्ग का अवतार कहना भी छोटा, खोटापन, कम है क्योंकि इस भारत बसुन्धरा पर ऐसे 2 महान अनंतशक्ति के पुंज,गौरवमयी, प्रभावशाली आत्माओं ने जन्म लिया है कि उन पवित्र,महान्, आदर्श महापुरुषों की सेवा, भक्ति, यशगाथा की चर्चायें स्वर्गों के इन्द्र, देवताओं ने स्वर्ग से आकर इस भारत बसुन्धरा पर की। लेकिन इस भारत भूमि के किसी भी महान् पुरुष ने स्वर्ण के इन्द्र, देवता की सेवा भक्ति क्या स्वर्गमें जाकर की ? शायद नहीं! क्योंकि इस भारत भूमि की महान् आत्माओं के ऊपर वह विशेष अनंत संगठित शक्ति ज्ञान, मान, आन, स्वाभिमान है कि इन विशेषताओं का स्वर्ग के देवताओं के अंदर भी संचार, प्रादुर्भाव नहीं है॥

आचार्यश्री ने विष्णुपुराण (वेदव्यास रचित) का एक श्लोक उद्धृत करके भारत की महानता का प्रतिपादन बहुत ही सटीक मार्मिक शैली से निम्न प्रकार किया-

**''गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।**
**स्वर्गपवर्गास्पद मार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्॥''**

''स्वर्ग के देवता भारत भूमि का गुण गान करते हुए कहते हैं कि भारत भूमि महान् हैं क्योंकि इस भारत भूमि पर जन्म लेने वालें महापुरुष अपनी साधना शक्ति के बल पर स्वर्ग और स्वर्ग से भी बढ़कर मोक्षधाम को प्राप्त करते हैं, परंतु हमें स्वर्ग से मोक्ष नहीं मिलता इसीलिए हमें कब ऐसा सुयोग मिलेगा जब हम भारत में जन्म लेकर शाश्वतिक सुख, अमृतधाम स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करेंगे।''

हमारा भारत स्वर्ग ही नहीं बल्कि मोक्षधाम, परमधाम, वैंकुठधाम है। यहाँ तीर्थंकर जब जन्म लेते हैं। तब 6 महीने पहले से ही रत्नों की वर्षा करके इस भारतभूमि को पवित्र-पावन बताते हैं।

भारत कहते किसे हैं ? इंडिया को, हिन्दुस्तान को ? नहीं भारत is not a India. यानि जिससे सम्पूर्ण विश्व को, सम्पूर्ण शक्तियों के साथ भरण पोषण मिले उसे कहते हैं भारत। ऐसे भारत की हम संतान हैं, हमें भारत के लिए गौरव होना चाहिए, भारत विश्वगुरु हैं। एक बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर जापान गये। जापानवासियों ने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने मना किया कि मुझे प्रणाम मत करो क्योंकि मैं तो सामान्य नागरिक हूँ तब वहाँ के लोगों ने कहा तुम उस भारत भूमि में जन्मे





हो जहाँ का एक-एक कण पूज्यनीय है। भारतीय वसुन्धरा में ऐसे अनेको महान् आत्माओं ने जन्म लिया है कि उनकी महानता वहाँ के कण-कण में समायी हुई है। ऐसी महान, पवित्र भारतीय संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति की महानता को बताते हुए आचार्यश्रीने आगे कहा कि एक बार स्वामी विवेकानंद जी विदेश गये तो उनकी पोशाक देखकर वहाँ के लोग हँसने लगे तो स्वामीजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि जिस पोशाक को देखकर आप हँस रहे हो वह पोशाक तो दर्जी बनाता है लेकिन हमारे देश की संस्कृति हम ज्ञान, सदचारित्र, ईमानदारी, पवित्रता आदि गुणों के द्वारा बनाते हैं। ऐसी पवित्र पावन संस्कृति में पलने वाले हम भारतवासी हैं। क्या ऐसी महान् संस्कृति हमारे अंदर अभी है ? विचार करो! आज भारत की संस्कृति दर्जी, नाई बना रहे हैं, कहाँ है हमारी संस्कृति की वह प्रज्ज्वलित अखंड ज्योति का प्रकाश ? जीवन के प्रत्येक क्षण में चारित्र, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, ज्ञान-विज्ञान, सत्य का ऐसा अखण्ड प्रकाश प्रकाशित होना चाहिए ताकि मिथ्या, मोह, कलह, ईर्ष्या, वैमनस्य, आपसी मनमुटाव, अशांति, विद्रोह, घृणा, अनैतिकता का अंधकार पास में आने ही न पावे। हमारे देश की संस्कृति महान् हैं लेकिन हमें उसकी महानता के विषय में ज्ञान नहीं है। भारतीय संस्कृति को कभी पहिचाना नहीं। भारत के निवासी चक्रवर्ती के भ्रष्ट बच्चे हैं। भारत में महान् आत्मायें हुई लेकिन हमने उनको समझा नहीं। हमारा देश जितना ही महान् है हम उतने ही छोटे, खोटे हैं। हमने उपलब्धियों का दुरुपयोग करना ही सीखा। जिस प्रकार कई अच्छी वस्तुओं के मिश्रण करने पर वे वस्तुएँ आपस में सड़ गल-कर शराब, मादकता का रूप ले लेती हैं। इसी प्रकार हमारे बाह्य आडम्बर, ढोंग, दिखावा, छलकपट, मायाचारी आदिने मिलकर इस भारतीय संस्कृति को विकृत कर दिया, मादक बना दिया है। शव को जिस प्रकार सुंदर फूलमालाओं आदि सुंदरवस्तुओं से सुसज्जित करके सजाओं तो क्या उस शव की कोई शोभा है। ऐसे ही हम संस्कृति को बाह्य ढोंग, क्रियाकाण्ड रचकर उसकी महानता की बाहरी चर्चायें करके उस आदर्श संस्कृति को महान् बनाना चाहते हैं लेकिन ऐसे ढोंग दिखावे से क्या संस्कृति आदर्श बन सकती है। हम कितनी भी बाहरी चर्चायें क्रियाकाण्ड कर लें लेकिन जब तक विवेकवान् बनकर आचरण में नहीं उतारेंगे तब तक आदर्श आ नहीं सकता। एक बार पाण्डव अपनी आत्मा को पवित्र-पावन बनानेके लिए गंगा जमुना नहाने के लिए गये तो श्रीकृष्ण ने

भी एक कड़ुवी तुम्बी दे दी और कहा अपने साथ इसे भी स्नान करा देना ताकि इसकी कडवाहट चली जाये। पाण्डवों ने ऐसा ही किया। उस कड़ुवी तुम्बी को खूब स्नान करा दिया और वापिस श्रीकृष्ण को दे दी जब श्रीकृष्ण ने उसे खिलाया तब वह कड़ुवी ही निकली। तब श्रीकृष्णने पांडवों को समझाया कि जिसका जो स्वभाव होता है उसे बदलने के लिए बाहरी क्रियाकांड तब तक उतने प्रभावकारी नहीं होते जितने कि अपने भावों को, विचारों को न बदला जाये। ऐसे तो गंगा यमुना में कितने ही जलचर प्राणी रहते हैं सभी को मोक्ष जाना चाहिए लेकिन जब तक हम अपने स्वभाव में स्थिरता, विचारों में पवित्रता नहीं लायेंगे और बाह्य ढोंग दिखावा, क्रियाकाण्ड करते रहेंगे तब तक कदापि सुख–शांति का अहसास नहीं होगा।

उपनिषद में लिखा है– ''अपने को पहिचानों, स्वयं को देखो, आत्म विश्लेषण करो। जिस प्रकार एक इकाई के बिना हजारों शून्यों की कोई महत्ता नहीं, कोई कीमत नहीं लेकिन उस एक इकाई के कारण ही उन शून्यों की महत्ता, कीमत बढ़ जाती हैं उसी प्रकार स्वयं को पहिचाने बिना समस्त संसार का पहिचानना कोई लाभकारी, उपयोगकारी, महत्वकारी नहीं है।'' इसीलिए प्रत्येक क्षण एवं स्वयं को जानने, पहिचानने का प्रयत्न करो। लेकिन हमारे अनादिकालीन कुसंस्कारों के कारण स्वयं को जानने पहिचानने के संस्कार नहीं बन पाते हैं और हम बाह्य जगत को देखने में ही अधिक आनंद का अनुभव करते हैं। हमारी जो पुरानी मान्यतायें, परम्परायें हैं उनसे हम सहजता के साथ नहीं जुट पाते क्योंकि बहुत मजबूत संस्कार हो गये हैं। कुत्ते की पूँछ को कितने ही वर्षो तक सीधा करने के लिए पाईप में लगा दो लेकिन पाइप निकलते ही वह टेड़ी ही होगी ऐसे ही हम लोग कितने भी धार्मिक प्रवचन, पूजा–पाठ, भजन–कीर्तन कर लें लेकिन हमारी मिथ्या मान्यतायें नहीं छूटती हैं। हमें कोई कितना भी समझावे लेकिन हम तो वैसे के वैसे ही –

**''मक्का गये मदीना गये बनकर आये काजी।**
**इल्लत गयी न आदत गई रहें पाजी के पाजी॥''**

इसी प्रकार भारतवासियों का जप–तप–धर्म–कर्म ऐसा ही हैं। बाह्य दिखावा अधिक हैं। ''जीवित बाप से लट्ठम लट्ठा मरे हुए को पहुँचावे गंगा'' वाली नीति का अधिक प्रयोग करते हैं इसीलिए दुःखी हो रहे हैं। गंगा–यमुना तीर्थयात्रा, जप–





तप, व्रत–संयम, पुण्य–पाप, सत्य–असत्य सब हमारे अंदर ही है। भारत के अधिकाँश लोग रूढ़िवादी, अंधविश्वासी हैं। हम लोगों में जितनी रूढ़ियाँ, मिथ्या मान्यतायें हैं शायद अन्य देशवासियों में नहीं है। आज भी दासीप्रथा, दहेजप्रथा, श्राद्ध परम्परा, सतीप्रथा, बालविवाह आदि जैसी कुप्रथायें, रुढ़ियाँ प्रचलित हैं। आज तो सूर्य तले अंधेरा हो रहा हैं न कि दीपक तले। आज हम मिथ्या मान्यताओं में ही धर्म मानकर बैठ गये हैं जितना खतरा नास्तिकों से नहीं हैं जितना कि ढ़ोंगी आस्तिकों से।

हमारे संत, मनीषी, ऋषियों ने हमें अनेक उपलब्धियाँ दी, गणित में जीरों दशमलवपद्धति, ज्योतिषशास्त्र, मंत्र विद्यायें, आयुर्वेद चिकित्सा, पर्यावरण सुरक्षा,पारिस्थितिकी सिद्धान्त (इको सिस्टम) बसुधैव कुटुम्बकम्, परस्परोपग्रहो जीवानाम्, अनेकान्त–स्याद्वाद सिद्धान्त आदि आदि सिद्धान्त, सूत्र,विद्यायें दी लेकिन हमनें सभी सिद्धान्त सूत्र, विद्याओं का दुरुपयोग करके आपस में भेदभाव कूटनीति छलकपट, मायाचारी, पापाचारी, भ्रष्टाचारी,बाह्य– ढोंग, दिखावे को महत्व देकर सभी कुरीतियों को अपना लिया।

अगर हम हमारे ऋषि मुनियों के बताये अनेकों सिद्धान्तो में से केवल कुछ ही सिद्धान्तों का अपने जीवन में पालन करें तो यह गारत बना हुआ भारत महान भारत ही रहेगा। हम अभी भी परतंत्र हैं, हम अभी भी कहाँ स्वतन्त्र हैं ? सभी कहते हैं भारत को स्वतंत्र हुए 50 वर्ष हो गये लेकिन मैं अभी भी यह कहता हूँ कि भारत को स्वतन्त्र हुए अभी 50 साल नहीं हुए बल्कि भारत अभी भी 500 साल पुरानी दासताओं की जंजीरों में जकड़ा हुआ है।

हमारी स्वतंत्रता का उपयोग तो अन्य देशों ने किया। हम तो स्वतंत्र होकर स्वतंत्र नहीं हुए बल्कि स्वछन्द हो गये, अपनी मनमानी करने लगे और ऋषि संतों द्वारा बताये मार्ग को तजकर कुमार्ग को अपनाकर अपने को स्वतंत्र, विकसित युग को महामानव मानने लगे इसीलिए हमारा सम्पूर्ण विकास, उन्नति, प्रगति का प्रशस्त पथ अविरुद्ध हो गया। हमारे पास जो जीरो था हम उस जीरों से जीरों ही रह गये एवं अन्य दूसरें उस जीरों को प्राप्त करके हीरों हो गये। यह है हमारी स्वतन्त्रता की सही पहिचान।

अगर हमें वास्तविक स्वतन्त्रता का रहस्य समझना हैं तो समस्त बुराईयाँ, अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, मिथ्या गलत मान्यतायें, परंपरायें छोड़नी होगी और मानसिक

क्रांति करनी होगी। यह मानसिक क्रांति परिवार, समाज, देश, विदेश, से प्रारम्भ न होकर सर्वप्रथम स्वयं के अंतःकरण से प्रारम्भ होगी। पहले स्वयं को जगना होगा तभी दूसरों को जगा पायेंगे। पहले स्वयं के विचारों, भावों आचरणों के द्वारा स्वयं के जीवन को परिवर्तित करना होगा तब कहीं जाकर हम दूसरों को परिवर्तित कर पायेंगे। जिसका मानसिक स्तर नीचा है चाहे वह साधु महात्मा, वैज्ञानिक, राजनेता, धर्मनेता क्यों ना हो उसके जीवन के सम्पूर्ण स्तर नीचे ही रहेगें। वह कभी भी उच्च स्तरीय बन नहीं सकता।

आज युग की पुकार है कि हम सभी को प्रेम-संगठन के साथ आगे बढ़ना हैं, धर्म अपना कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना है कैसे बढ़ेगा आपसी प्रेम संगठन ? इस प्रश्न का एक ही उत्तर हैं हमें अपनी संकीर्ण विचारधाराओं को त्यागपत्र देकर मानसिक क्रांति करनी होगी, अपने अंतःकरण को खोजना होगा, स्व दीपक बनना होगा, एक जलते हुए दीप से हजारों दीप जल सकते हैं।

हमारे देश में आज भी उपलब्धियों की, प्रतिभाओं की कमी नहीं है। आज भी हमारे देश में 60% डोक्टर्स, इंजीनियर्स, वैज्ञानिक, प्रोफेसर्स, साधु-संत, ऋषि मनीषी देश विदेश में हैं। लेकिन उन प्रतिभाओं का हमारे देशवासियों को ज्ञान ही नहीं, उन प्रतिभाओं का कोई आदर-सत्कार नहीं, उनकी कोई महत्ता उपयोगिता नहीं इसी कारण समस्त प्रतिभायें हमारे देश से पलायन कर जाती हैं। आज भी हम सुप्तावस्था में हैं, परतंत्रता की बेड़ियों में बंधे हैं।

आचार्यश्रीने सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को सुधारने के लिए कहा कि मैं दुनिया के रोगियों को काट-छाँट करके ऑपरेशन करना चाहता हूँ, जब तक दूषित रक्त नहीं निकलेगा तब तक स्वस्थ नहीं होगे। हिन्दू, आर्य, जैन हम सभी अधिक संख्या में अहिंसक है फिर भी हिंसा का प्रचलन कितना बढ़ चढ़कर हो रहा हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि अन्याय को करना एवं सहन करना दोनों ही अन्याय हैं पाप हैं। यह अहिंसा नहीं बल्कि कायरता, नपुंसकता है। हमारे देश में हिंसा हो रही हैं और हम अहिंसक बनकर बैठे हैं लेकिन ऐसे इस प्रकार अहिंसक बन नहीं सकते। हमें पापों का विरोध करके आगे आना होगा।

हमारे देश में जब-जब आसुरी प्रवृत्तियों ने जन्म लेकर देश की जनता को दुःखी, परेशान, शोषण किया, अत्याचार, भ्रष्टाचार, पापाचार फैलाया तब कुछ महान् आत्माओं ने आगे आकर उनका विरोध किया एवं नयी क्रांतियों को जन्म





दिया। कृष्ण ने कंस का परिहार किया, राम ने रावण का, राजा राम मोहनरायने बलिप्रथा, सतीदाह प्रथा का, कालमार्क्स ने आर्थिक विषमता का, अब्राहम लिंकन एवं महात्मागांधी ने दासप्रथा का, ईसामसीह ने शत्रु से न बैरत्व रखने का तथा महावीर भगवानने सर्वोदय के माध्यम से विश्व कल्याण करने आदि अनेकों उदाहरण इतिहास, पुराणों के पृष्ठों में लिखे हुए हैं। इसीलिए हमें अपनी सुप्त चेतना को पुनः जागृत करना होगा एवं संगठित होकर काम करना होगा। हम मानते हैं अंग्रेजों ने हमें तोड़ा हमारे देश को परतन्त्र किया लेकिन यह गलत हैं। हम आपसी कूट-कलह, असहयोगी शक्ति के कारण टूटें परतन्त्र हुए। हमारे शरीर के अंदर प्रतिरोधक शक्ति मजबूत है तो शरीर में रोग नहीं होगा। इसी प्रकार हम सभी संगठित होंगे तो अन्य लोग हमें परतन्त्र नहीं कर सकते।

गायत्री शक्तिपीठ की पूर्णाहुति के अवसर पर विभिन्न विचारकों के साथ आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने अपनी सहभागिता देकर सहृदय, प्रेम वात्सल्य भरें शब्दों में कहा कि "हम सभी संप्रदाय के साधु-संतों एवं नागरिकों को सामूहिक रूपसे सम्मलित होकर एकता संगठन के सूत्रों में बँधकर अहंकार, राग-द्वेष वैमनस्य, कलह त्याग करके देश का उद्धार करना है, इस भारत को पुनः विश्वगुरु बनाना हैं। विश्वमैत्री, शक्ति, संगठन को अपना कर विश्वधर्म की स्थापना करना है। आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने गायत्री शक्तिपीठ के, कार्यकर्ताओं एवं पं. श्रीरामशर्मा आचार्य के महान् आदर्शों उद्देश्यों, सराहनीय कार्यों की प्रशंसा करते हुए उन सभी को संगठन, एकता के साथ कार्य करने के लिए प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद दिया कि ऐसी प्रभावान् प्रतिभाओं से ही यह भूमण्डल प्रकाशित होता है। हम सभी संगठित होकर उदार, सहिष्णु, करुणावान्, दयावान् परोपकारी बनें एवं कठिन मार्गों को भी हँसते-हँसते पार करके अपना उन्नति का पथ प्रशस्त करें। महान् भारत की महान् आदर्श परम्परायें अपनायें अपनी संस्कृति को विश्व की आदर्श संस्कृति बनायें। उन महान् आदर्श आत्माओं की शक्तियों का स्मरण करते हुए उनके बताये मार्ग पर अपने कदम आगे बढ़ायें ताकि सम्पूर्ण विश्व में समस्त सूक्ष्म, बादर जीवों को कल्याण, सुख, आनंद मिल सके।

आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेवने आह्वान किया की 'धर्मदर्शनविज्ञान शोध संस्थान' एवं गायत्री शक्तिपीठ के प्रज्ञापुत्र तथा समस्त जैन समाज एक साथ संगठित होकर उदारमय, सत्य अहिंसात्मक, वैज्ञानिकधर्म का प्रचार-प्रसार करें, जिससे स्वकल्याण के साथ साथ विश्वकल्याण भी होवें।

# 9 समृद्धि का मूल मंत्र - आपसी संगठन

नंदीश्वर विधान के अंतर्गत धर्मसभा को सम्बोधित करते हुए वैज्ञानिक धर्माचार्य पूज्य कनकनंदीजी गुरुदेव ने कहा कि- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपनी उन्नति, प्रगति विकास कर सकता है। बालक जब माँ के गर्भ से जन्म लेता है तब वह निःसहाय रहता है। इस निःसहाय अवस्था में स्वयं की सुरक्षा, वृद्धि, पालन-पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। विद्या के लिए गुरु की, वस्त्र के लिए जुलाहे की, फर्नीचर के लिए बढ़ई की, बाल बनाने के लिए नाई की, अनाज के लिए कृषक की, कपड़ा धोने के लिए धोबी की आदि की सहायता लेता है। इसीलिए मनुष्य समाज से जुडा हुआ अभिन्न अंग है। इतना ही नहीं जब वह मरता है तब उसकी अर्थी को शमशान ले जाने के लिए भी संगठन की आवश्यकता पड़ती है। परिवार, समाज, देश, राष्ट्रकी उन्नति आपसी प्रेम संगठन से ही संभव है।

प्रत्येक धर्म ने, संप्रदायने इस संगठन के महत्व को स्वीकार किया है। जैन धर्म के प्रत्येक तीर्थंकर जैन शासन का प्रवर्तन करने के लिए सर्वप्रथम मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका रूपी चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। इसी प्रकार गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म के प्रवर्तन के लिए संघ की स्थापना की थी। इसीप्रकार ईसामसीह भी कुछ धर्मानुयायियों की सहायता से धर्म प्रचार में समर्थ हुए। आज वर्तमान समय में संगठन, एकता, आपसी प्रेम, वात्सल्य होने के कारण ईसाई धर्म का सबसे अधिक विकास हुआ है।

हमारा जैन धर्म प्राचीन धर्म है फिर भी हम कम संख्या में एवं हर दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इसका मूल कारण आपसी फूट, असहयोग हैं। जैन समाज में धर्म को लेकर संत को लेकर, ग्रंथ को लेकर सबसे अधिक भेद-प्रभेद हैं। जैनधर्म का मुख्य सूत्र था ''परस्परोपग्रहोजीवानाम्'' अर्थात् परस्पर उपकार से ही सबका जीवन चलता है। परस्पर का सहयोग करते हुए आपसी प्रेम वात्सल्य के साथ सहनिवास करना ही समाज है। ताने-बाने रूप से सम्बन्धित धागों का समूह जैसे वस्त्र है न कि अव्यवस्थीत धागों का ढेर इसी प्रकार परस्पर उपकार करते हुए सहवास करने वाले प्राणी जगत् को समाज कहते हैं न कि परस्पर असहयोग करने





वाले जीवों की भीड़। लेकिन आज हम इससे विपरीत चल रहे हैं। सामूहिक रूप में अवश्य लड़ाई-झगड़े करेंगे इसीलिए उन्नति नहीं कर पा रहे हैं।

आज सभी कहते हैं अंग्रेजों के कारण भारत गुलाम रहा, ईस्ट इण्डिया कंपनी के कारण हम गुलाम हुए लेकिन मैं कहता हूँ कि हम अंग्रेजों के कारण ईस्ट इण्डिया कंपनी के कारण गुलाम नहीं हुए बल्कि आपसी कूट, भेदभाव के कारण ही गुलाम हुए। पृथ्वीराज चौहान पराजित हुआ जयचंद्र के कारण। हम भारतीय आपस में लड़े-मरे और गुलाम हुए। आज भारत की सबसे दयनीय-शोचनीय स्थिति है। सम्पूर्ण विश्व में जापान का नाम अग्रणी है। जापान का मुकाबला विश्व बाजार भी नहीं कर सकता क्योंकि वहाँ के देशवासियों के अंदर कर्तव्यपालन, देशनिष्ठा, स्वावलम्बन,निःस्वार्थ भावना फूट-फूट कर भरी है। वहाँ का राष्ट्रीय चारित्र उच्चकोटि का है। जबकि भारत का राष्ट्रीय चारित्र एवं कर्तव्यनिष्ठा तो है ही नहीं। भारतीयों को अपने कर्तव्य पालन करने में शरम आती है। विद्यार्थी अपनी पुस्तकें ले जाने में शरम अनुभव करते हैं। अगर कोई अपना कार्य स्वयं करेगा भी तो उसे सभी हेय एवं नीची दृष्टि से देखते हैं।

माँ बाप स्वयं भी कर्तव्यनिष्ठ, स्वावलम्बी नहीं होते एवं बच्चों को भी ऐसी शिक्षाओं से संस्कारित नहीं करते। इसीलिए समृद्धि-विकास के मार्ग अवरुद्ध हैं।

***जैन धर्म प्रचार-प्रसार के लिए तन-मन-धन से समर्पित कार्यकर्ता गण***

# आचार्यश्री की जीवनी

तर्ज– जरा सामने तो आओ छलिए...

भक्ति करूँ गुरुदेव की, राह निहारूँ गुरु राज की।
कैसी सौम्य गुरु मुद्रा है, तारण–तारण ऋषिराज की॥

ब्रह्मपुरी में जन्म लिया था, माँ रुक्मणि देवी माता
मोहन चंद्रजी तुमरे पिता है, गंगाधर नाम ये बचपन का
जब जन्म हुआ गुरुदेवका, खुशियाँ मनायी अपार थीं
कैसी सौम्य..... (1)

बाल्यकाल से भाव जगे थे, शादी मुझे नहीं करनी है
बनकर के साधु नग्न दिगम्बर, धर्म साधना करनी है
धारण करूँ पद निग्रंथ मैं, कब होऊंगा घर से मुक्त मैं
ऐसी वैराग्यमयी थी भावना तारण–तारण ऋषिराज की
कैसी सौम्य..... (2)

मिला साथ कुंथु गुरुवर का वैराग्य भावना प्रगटाई
मुझे बना दो नग्न दिगम्बर गुरु को इच्छा बतलाई
कुंथु गुरु ने सुनी तुम पुकार को यती बनाया गुरुराज को
कैसी सौम्य..... (3)

पाँच फरवरी को मुनि बनाया, श्रवण में वस्त्रों को त्याग दिया
बन गये गुरुवर नग्न दिगम्बर, पिच्छी कमण्डलु धार लिया
भोजन करने लगे कर पात्र में चलने लगे भू निहार के
कैसी सौम्य..... (4)

अध्ययन किया सब धर्म ग्रंथों का, कर्मकांड महिमा जानी
मूलाचार का अध्ययन करके, अनगार विधि तुमने जानी
मैं भी पढ़ूँ गुरुदेव से केवल 'ऋद्धि' मिले गुरुज्ञान
कैसी सौम्य..... (5)

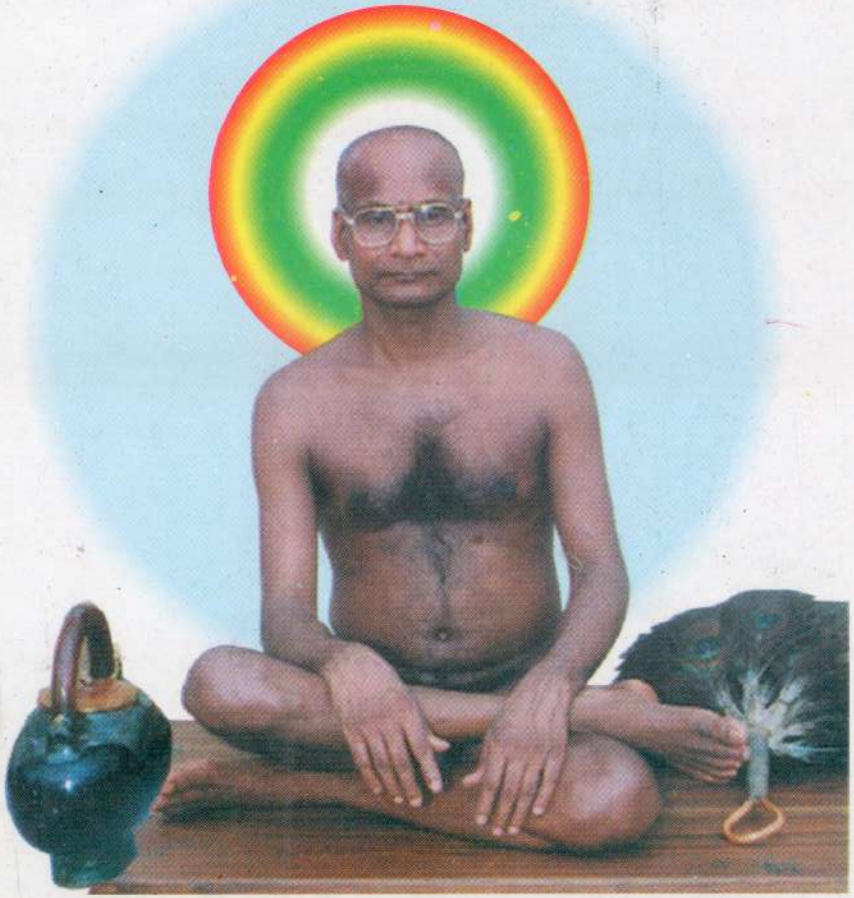

आ. रत्न श्री कनकनन्दीजीश्री गुरुदेव